विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका
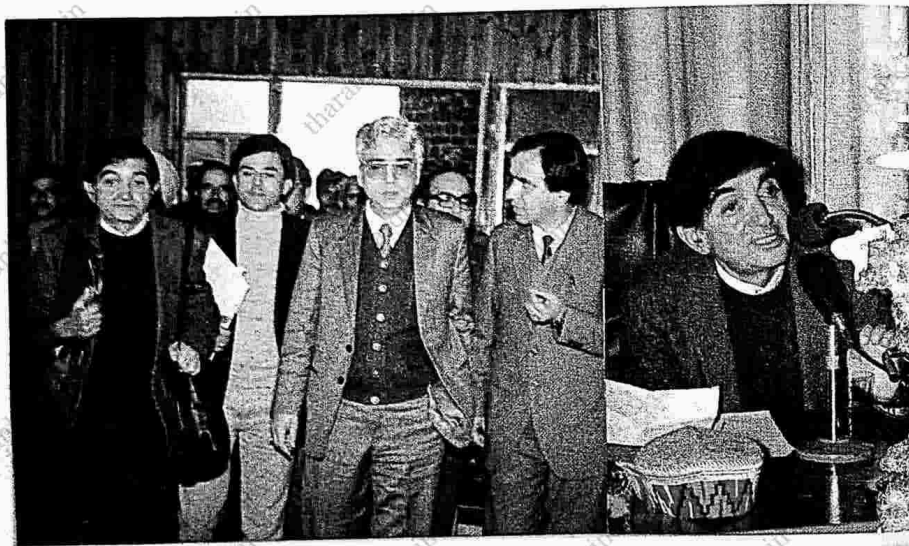
आवरण

मुख्य पृष्ठ : गणेश की धातु प्रतिमा (दसवीं सदी) राज्य संग्रहालय शिमला में सराहन (जिला शिमला) से संग्रहीत

ऊपर का चित्र : शिमला में यशपाल सृजनपीठ की स्थापना के अवसर पर सुप्रतिष्ठित साहित्यकार श्री निर्मल वर्मा का स्वागत और साहित्यकारों व बुद्धिजीवियों को संबोधित करते हुए श्री निर्मल वर्मा। छाया : हाकम शर्मा

अन्तिम पृष्ठ : रंगनाथ मंदिर पुराना बिलासपुर (भाखड़ा बांध के निर्माण के बाद जल निमग्न) की गणेश कार्तिकेय व द्वारपाल की प्रस्तर मूर्तियां छाया : नवीन धीमान

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी
वर्ष-4, अंक-23, नवम्बर-दिसम्बर, 1988

मुख्य संपादक
सी०आर०बी०ललित
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि० प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
त्रिशूल, शिमला-171003 दूरभाष : 3669, 6846, 4614

वार्षिक शुल्क : दस रुपये, एक प्रति : दो रुपये

क्रम

पाठकीय

सत्येन्द्र शर्मा (सतना, म० प्र०)

मेरी चिट्ठियां प्रायः गुम नहीं होतीं फिर भी विपाशा के स्निग्ध आकर्षण के पास में घिरकर किसी डाकिए ने डाकाजनी की हो तो आश्चर्य नहीं। आपने कृपा पूर्वक दूसरी प्रति भेज दी सो धन्यवाद।

विपाशा 20 देखकर सबसे पहली धारणा तो यह बनी कि इसके व्यक्तित्व फलक में न सिर्फ जातीय चेतना (भारतीय) की स्मित आभा है वरन् वह प्रशस्त भाव विचारधारा से सम्पन्न है, वैचारिक आग्रह प्रशंसनीय है। किन्तु कुछ पत्रिकाएं एक विशेष तरह की भाषा की जकड़न (एकरसता) से ग्रस्त हैं, विपाशा इस एकरसता से उन्मुक्त और वैविध्य लिए है।

डा० देवराज का लेख उनकी लेखन प्रकृति के अनुकूल पूरी बात नहीं कहता, बेशक-उकसाहट पैदा करता है। किन्तु जिस गंभीर मुद्दे को छेड़ा गया है उसमें सिर्फ निष्कर्षात्मक बयान नहीं प्रमाण स्वरूप ब्योरा भी अपेक्षित है। किन्तु जैसा कि आपने कहा यह 'बहस-तलब' है। "सहचर है सौंदर्य" में डा० रामदरश जी का कविमन पंक्ति-पंक्ति में सहचर है। अच्छा होता कि उनके उस प्रवास में सम्पन्न किसी विचार गोष्ठी आदि की भी झलक मिलती। कविताओं का चयन बड़ा मोहक है, विशेषकर देशांतर के अन्तर्गत क्रासिनखिम्मर्स्की की तीनों कविताएं आश्चर्यजनक ढंग से आत्मीय लगीं। लगा कि मनुष्कृत समीक्षाओं के बावजूद प्रकृति की भाषा, मां-बाप की वात्सल्य छांव और सब घर एक स्त्री बिल्कुल एक-सी हार्दिकता का रचाव करते हैं। नटराज पर स्व. श्री वत्स्य का लेख रोचक और ज्ञानवर्धक है। लोक संस्कृति पर डा० विद्याचन्द ठाकुर की कलम उल्लेखनीय है।

समीक्षाएं कुछ और धारदार, अधिक जीवन्त हों तो सूचनात्मक होने से बच सकती हैं। और हां संपादक जी, वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धि पूरी पत्रिका में नदारद हैं इसके लिए किसकी सराहना करूं यह एक प्रशंसनीय बिन्दु है।

आनन्द वर्द्धन (ब्रह्मपुत्र, उ० प्र०)

चार साल पहले ही विपाशा के तट पर मैं आकर्षित हुआ था। उसके बाद लगातार हरेक अंक का इन्तजार रहता है। पत्रिका सुन्दर, सस्ता एवं सारगर्भित तो है ही, साथ ही इसमें प्रकाशित होने वाली कुछ कहानियां आदि साहित्य काफी प्रशंसनीय, लाभप्रद एवं अविस्मरणीय रहता है।

भगवानदेव 'चैतन्य' (सुन्दर नगर)

विपाशा का 20 वां अंक पढ़ने को मिला। वास्तव में ही विपाशा का स्तर अब इतना सही हो गया है कि वह अब किसी राय की मोहताज नहीं है। आप व आपके सहयोगी इसके लिए बधाई के पात्र हैं। प्रस्तुत अंक में सत्येन्द्र शर्मा द्वारा लिखित लेख अत्यधिक सारगर्भित एवं रोचक लगा। 'सहचर है सौंदर्य' उत्कृष्ट रचना है। कहानियां एवं कविताएं सभी उच्चस्तर की हैं। डा० सुरेश धींगड़ा, श्रीनिवास श्रीकान्त तथा सुदर्शन वशिष्ठ की समीक्षाएं सराहनीय हैं। विपाशा हिमाचल से निकलने वाली एकमात्र स्तरीय पत्रिका है। इसलिए यहां की संस्कृति ही इसमें मुख्य रूप से झलकनी चाहिए। इस कमी को पूरा किया है डा० विद्याचन्द ठाकुर की रचना 'विशुव का त्योहार'...ने। गंभीर्य, रोचकता तथा तथ्यों का प्रकटीकरण इस रचना की मुख्य विशेषताएं हैं।

रमेश ठाकुर (सिरमौर)

विपाशा का अपने आप में एक अनूठा स्थान है, अंक 17 में 'मरा हुआ चांद" (उड़िया कहानी) अच्छी लगी। वैसे हिमाचल की संस्कृति से सम्बन्धित यदि आप लेख के साथ चित्र भी छापते तो ज्यादा बेहतर होता।

मैं विपाशा का नियमित पाठक हूं। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी विपाशा हियाचल की संस्कृति की सही अभिव्यक्ति होगी।

भूपराम सारस्वत (निचार, किन्नौर)

पिछले एक वर्ष से 'विपाशा' का नियमित पाठक हूं। पत्रिका अपने आप में बेजोड़ है। पत्रिका के सरकारी होने की मोहर प्रकाशित सामग्री में दृष्टिगोचर नहीं होती। मैं इसे पाठकों का सौभाग्य समझता हूं।

प्रेमदास शर्मा (शिमला)

विपाशा में 'निधि' स्तम्भ बराबर दिया करें। संभवतः यह इसलिए नहीं दिया जा रहा होगा ताकि नई रचनाओं को ज्यादा स्थान मिल सके। लेकिन हमारे-जैसे पाठकों के लिए वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। पत्रिका में केवल लेखकों का भला ही नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि पाठकों के लिए उपयोगी सामग्री को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

लम्बे समय से इधर के लेखकों की कोई अच्छी कहानी पढ़ने को नहीं मिली है। लोग कविता लिखने में जुटे हैं जो सबकी समझ में भी नहीं आती।

विपाशा के आवरण बहुत आकर्षक जा रहे हैं। प्राचीन द्वार हो या प्राचीन पात्र ऐसी चीजों का उपयोग सबमें अलग दिखाई देता है। वर्ना लड़कियों के फोटो तो हमारे यहां धूप-अगरबत्ती से लेकर साहित्य तक में सब जगह बेचे जाते हैं।

संपादकीय

मूल्यांकन के आयाम

किसी देश या प्रदेश में क्या और कैसा साहित्य रचा जा रहा है, इसका सही मूल्यांकन, संभवतः महज़ प्रोत्साहनों और गतिविधियों के आकलन की अपेक्षा इस बात पर निर्भर करता है, कि क्या हमारा रचनाकार पाठकों को कुछ ऐसी रचनाएं दे पा रहा है, जो उनके ज़हन पर अपना असर छोड़ते हुए अपने लिए थोड़ी-सी जगह बना पाती हों।

आखिर जितना कुछ छप रहा है, जो कुछ हमें पढ़ने को मिलता है उसमें से ऐसा कुछ निकलता भी है, जो हमें कुछ ठहरकर सोचने को मजबूर करे, या अपने समूचे प्रभाव के साथ कुछ ऐसी बात कहे, जिसे अभिव्यक्त करने के लिए स्वयं पाठक भी कहीं अनजाने में तड़फ रहा होता है। यदि पाठक के दिल और ज़ुबान की बात छीनने वाली कोई रचना या एक वाक्य भर भी देने की क्षमता हममें है तो कहा जा सकता है कि आखिर रचना हो रही है। वर्ना एक जैसे कथ्य व शैली की कविताएं, कहानियां और दूसरी रचनाएं बराबर पृष्ठ पलटने को मजबूर करती हैं। इन्हें पढ़ना संपादन और प्रूफशोधन जैसे कार्य से जुड़े प्राणी की मजबूरी तो हो सकती है। लेकिन पाठक पर किसी का जोर नहीं चलता। उसे अपनी लपेट में लेने के लिए किसी रचना में वे तमाम गुण होने ही चाहिए, जिनकी अपेक्षा किसी भी सृजन से की जाती है। जो अपने प्रभाव के रूप में ही हमारे सामने प्रकट होते हैं।

लेखन की दिशा व दशा को उघाड़ कर सामने लाने के उद्देश्य से ही प्रदेश में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन का क्रम शुरू

किया गया है। पिछले अंक में श्री सुंदर लोहिया का 'हिमाचल की हिन्दी कहानी' पर लंबा लेख गया था और इस अंक में डॉ०ओमप्रकाश सारस्वत का लेख नाटक पर आधारित है। आगामी अंकों में भी बाकी विधाओं को लेकर ऐसे लेख आएंगे।

पिछले लेख पर पाठकों की जिस उत्साह के साथ प्रतिक्रियाएं हमें मिल रही हैं, इसे देखकर लगता है कि यह मूल्यांकन क्रम एक लम्बी बहस का रूप लेगा, जिसमें कुछ निरर्थक रहने के बावजूद काफी कुछ सार्थक जुट पाएगा। इसके लिए स्वस्थ प्रतिक्रियाओं की हमें बराबर प्रतीक्षा रहेगी। इस बहाने रचना और आलोचना दोनों के मुखड़े साथ-साथ अनावृत होंगे तो एक अलग तरह की दिलचस्पी बन पाएगी।

शिमला में यशपाल सृजनपीठ की स्थापना प्रदेश के साहित्यिक क्षेत्र के लिए सचमुच एक महत्वपूर्ण घटना है। ऐसा इसलिए भी कहा जा सकता है कि प्रदेश में इस तरह की यह पहली पीठ है।

इस अंक में बोर्खेज पर एक महत्वपूर्ण लेख और बोर्खेज की कहानी व एक छोटी कविता के अनुवाद महत्वपूर्ण हैं। तीन कहानियां और पांच कवियों की कविताएं भी शामिल हैं।

इसके साथ ही समीक्षा तथा कुछ आयोजनों के विवरण भी नियमित सामग्री के रूप में हैं।

जार्ज लुई बोर्खेज़

□ जेम्स नेल्सन
□ अनुवाद : इन्दुप्रकाश कानूनगो

"डॉन कुऔते" मेनार्ड ने मुझे कहा था, "सर्वोपरि एक मनोरंजक पुस्तक थी : लेकिन अब वह राष्ट्र प्रेम जताने का, भाषाविज्ञानी धृष्टताओं को करने का, अश्लील डीलक्स संस्करणों के प्रकाशन का बहाना बन गई है। कीर्ति, नासमझी का एक रूप है और वही कदाचित् नितांत निकृष्ट बात है।"

"पिएरे मेनार्ड, कुऔते का रचेता"
लेब्रिंथ्स से उधृत।

जार्ज लुई बोर्खेज़ ने चौथे दशक की शुरूआत में जब यह लिखा था तभी से वह, अर्जेन्टाइना में, विचित्र रूपालंकारों को गढ़ने वाला एक कवि और एक प्रखर साहित्यिक वाद-विवादी माना जाने लगा था, और कुछ ऐसी अनोखी कहानियों के लेखक के रूप में प्रख्यात हो गया था जो निबंधों की तरह लगतीं थीं और अपने ऊपर अकादमीय अलंकरण जड़े हुए प्रतीयमान लेकर भी वे फन्तासी की ही हरकतें थीं। लेकिन वह "कीर्ति" के लिए एक होनहार प्रत्याशी नहीं गिना गया। वैसे तो 1933 में ही ड्रूला रोशेल ने अपनी ब्युनेस एअर्स की यात्रा के दौरान ही सूचित कर दिया था : "बोर्खेज़ वॉउत ले वायेज।" लेकिन इस, और अन्य पूर्वाभासी के शुभलक्षणों के बावजूद भी, बोर्खेस की रचनाएँ चन्द लोगों के ही मनोवेग को हिला पायीं थीं, और उनमें से भी अधिकांश लोग उसे व्यक्तिगत दौर से जानने वाले सज्जन थे। बल्कि उन्होंने भी, लम्बे समय तक उसे गम्भीरता से नहीं लिया था। यद्यपि वह स्पष्टतः नुमाइशी, चतुर और सेंसिटिव था, और उन दिनों अपने अधिकांश पाठकों के लिए वह ऐसा साहित्यिक नटखटिया था कि जिसकी प्रमुख महात्वाकांक्षा परिहासजन्य जटिल रचनाओं को गढ़ना था ताकि अर्जेन्टाइना के आडम्बरी पंडित समुदाय को परास्त किया जा सके। वह इतना सनकी दिखाई देता था कि उसे "महत्वपूर्ण लेखक माना ही नहीं जा सकता था। कि उन दिनों अर्जेन्टाइना में लिखने वाले अनेक मेधावी व्यक्तियों को पीछे छोड़ता हुआ वह विश्वव्यापी ख्याति अर्जित करेगा, यह अनुमान उतना ही ऊलजलूल लगता होगा जितनी कि उसकी अपनी कोई भी अमूर्त प्रस्थापनाएँ लगीं होंगीं।

1960 तक, बोर्खेज अपनी वे अधिकांश पुस्तकें लिख चुका था कि जिनके लिए आज वह प्रख्यात है (अॅ यूनिवर्सल हिस्ट्री ऑफ इनफेमी, 1935; अॅ हिस्ट्री ऑफ इटर्निटी, 1936; लेब्रिंथ्स, 1944; द एॅलेफ एंड अॅदर स्टोरीज, 1943; अॅदर इन्क्विजिशन्स, 1952; और ड्रीमीटिजर्स, 1960)। लेकिन 1961 में उसकी ख्याति ब्यूनेस एअर्स के पार बही और पश्चिमी

संसार के हर शहर में जा घुसी। उसी वर्ष बोर्खेज ने, जो तब अपने जीवन के सातवें दशक में चल रहा था, सेमुअल बेकेट की साझेदारी में प्रिक्स फारमेंटर पुरस्कार पाया और विचित्र गति से ऐसे पंथ का केन्द्र बन गया जिसकी कारीगरियाँ उन अकादमीय संस्थाओं में विशेषकर अनेकानेक थीं कि जिनके प्रचलनों की उसने बड़ी शालीनता से खिल्ली उड़ाई थी। अपनी "खोज" हो जाने के पश्चात् जो रचनाएँ उसने लिखीं, वे, एक आम सहमति के अनुसार, उनसे हलकी थीं जो उसने अपने ब्यूनेस एअर्स में रमे होने के दौरान लिखीं थीं। यद्यपि उसकी शक्तियां शनैः शनैः शिथिल होती गईं लेकिन उसकी ख्याति फिर भी घटना शुरु नहीं हुई। बोर्खेसियन-अध्ययन जो अपने गुरु के संसर्ग में आये चन्द श्रद्धालुओं की ही संपत्ति थी, उसने अब विशाल उद्योग का रूप ले लिया है। और जाहिर ही था कि बनावटी लेखक तेजी से उभर आये, तथा **भूलभुलय्या** (लेब्रिंथ्स), **दर्पण** (मिरर्स), **शेर** (टाइगर्स), **अगोचर निबन्धों के सारांश** (रिज़्यूम्स ऑफ नान-एक्ज़िस्टेंट ट्रीटाइजेस), एवं बोर्खेसियन संसार के अन्य सभी लक्षणों से युक्त पेचीदा कथाओं की नकल छापने लगे।

बोर्खेज स्वयं, इन घुसपैठियों के जत्थों के द्वारा, अपने निजी संसार की लूटपाट से उद्विग्न होकर, उसे छोड़ बैठा और उसने अर्जेन्टाइना के अतीत में, या एंग्लो-सेक्सन काव्य और आइसलैंड की वीरगाथाओं में शरण ली गोकि उसके कुछेक प्रशंसक इतने पर्याप्त चपल थे कि उन्होंने वहां भी उसका साथ दिया। "मैं लेब्रिंथ्स और मिरर्स और टाइगर्स और उन सभी चीज़ों से इतना तंग आ गया हूं, खासकर जब अन्य उनका दुरुपयोग कर रहे हैं", उसने अर्जेन्टीनियन लेखक सीज़र फरनान्डेज मोरेनो से कहा था। "यही तो नकलचियों को सुविधा है। वे हमारा इलाज कर देते हैं: अनेकानेक लोग वही कर रहे हैं जो मैंने किया, कि अब मेरे लिए यह कत्तई ज़रूरी नहीं कि मैं स्वयं ही उसे करूं।"

बोर्खेज को, विश्वव्यापी बोर्खेसियन-बिरादरी का उत्साह क्लेशप्रद लग सकता है, लेकिन उसकी गतिविधियां बिलकुल सहज हैं, खासकर तब जब कि उसकी तुलना उसी के उन देशवासियों से की जाये कि जिनकी गतिविधियां तब ही शुरु हुईं जब उन्हें यह पता चला कि एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित किया हुआ एक महान साहित्यिक उनके मध्य है। अर्जेन्टाइना में बोर्खेज, स्पेन में सरवेंटिस की महान 'झक' के समान, अनेकों राष्ट्रीय-गौरवों को जतलाने वाले उत्सवों का बहाना लग गया है। पिछले वर्ष उसे एक अवमानना तब भोगनी पड़ी कि जब उसे (किसी जनरल के द्वारा) "राष्ट्रीय कीर्तिस्तम्भ" घोषित किया गया—एक विचित्र सम्मान मूर्तिविधा के उस घनघोर विरोधी को कि जो राष्ट्र-राज्य को एक ऐतिहासिक ग़लती मानता रहा और जीवनपर्यन्त राष्ट्रवादियों (नेशनलिस्टों) के खिलाफ गुरिल्ला मुहिम चलाता रहा। फिर भी, किसी मार्शल ट्रॉफी की तरह वह उन अर्जेन्टीनियों द्वारा सिर पर उठाया गया जिन्होंने शायद ही उसकी पुस्तकें पढ़ीं हों मगर स्वीडिश एकेडमी के द्वारा उनके आदमी को नोबल पुरस्कार नहीं दिये जाने पर शोर मचाया हो। उसकी पुस्तकों के "अश्लील डीलक्स संस्करण" छपे जो शायद उसके उस क्लेश (ह्यू मिलिएशन) को पूरा करते थे जिसका उसे पूर्वाभास हो चुका था। "कीर्ति" ने वास्तव में ही उसे बाँध लिया था। आजकल उसकी व्यक्तिगत ज़िंदगी एक नगर से दूसरे नगर तक, "अर्जेन्टीनियन संस्कृति के एक राजदूत" के रूप में झंडा फहराती हुई घूम रही है, कि जिस पर एक-के-बाद-एक, अनेकों साहित्यिक सम्मान न्योछावर किये जा रहे हैं, ऑनररी डिग्रियाँ दी जा रही हैं, "अभिनन्दन" और "सम्मान" समारोह हो

रहे हैं, जिनमें वह चाहे सच्चे दिल से ही, लेकिन अत्यन्त आडम्बरी, खुशामद-भरे वक्तव्यों को सुनता हुआ बैठा रहने को मजबूर है।

किसी अत्यन्त वयोवृद्ध हो गये हुए प्रतिष्ठित रचनाकार के लिए विश्वस्तरीय सम्मान के ये परम्परागत टोकन, कहा जा सकता है, कि उस आदमी के लिए भरपूर होने ही चाहिये जिसने अपने जीवन का अधिकांश जानबूझकर दुर्बोधता में बिताया हो। लेकिन हमारे युग ने महान उपलब्धियों के व्यक्तियों के लिए अन्यान्य तिरस्कारों की युक्तियाँ खोज निकाली हैं, और किसी भी हालत में अर्जेन्टीनिया में, बोर्खेज़ एक मीडिया-यशस्वी आदमी बन गया है जो चलताऊ खयालों (पॉपुलर इमेजिनेशन) में फिल्मी सितारों, चालू गायकों, फुटबाल खिलाड़ियों और राजनेताओं के समानांतर घुमड़ रहा है। उसका भावहीन चेहरा (यदाकदा एक क्लांत मुस्कान से उद्दीप्त) टेलेविज़न-परदों और चमकीली पत्रिकाओं के चिकने पत्तों में से बारम्बार व्यग्र करती निगाहों से झाँकता है। उसकी भेंटवार्ताएँ, उसके विवरण और विदेशियों के द्वारा उस पर लिखे गये लेख—अक्सर संक्षिप्त किये हुए और कभी-कभी उसकी, पहले कभी लिखी उन खिचड़ी रचनाओं से विचित्रतः मिलते-जुलते—उन दैनिक, साप्ताहिक और मासिक प्रकाशनों के कालमों में भरे रहते हैं जिनका स्तर तुच्छ-कामुक-घटिया से लगाकर उच्च-साहित्यिक-गम्भीर होता है। कुछ भेंट वार्ताएं इतनी बड़ी होती हैं कि उनके लिए विशेष परिशिष्ट निकलता है। उनमें किसी भी विषय बाबत बोर्खेज़ की रायशुमारियाँ क्रमबद्ध दी जाती हैं जो उसके सहयोगी अर्जेन्टीनियों के लिए महत्त्वपूर्ण रुचि की हो सकती हैं लेकिन बोर्खेज़ के लिए कदाचित् ही रुचिकर होती हों [वे विषय हो सकते हैं : अमेरिकी विदेश नीति, असंतुष्टों के प्रति सैनिक शासन का रवैया, पेसो (अर्जेन्टीनियाई सिक्के) की दशा]।

एक श्रद्धेय संत की वह कथा, कि जो विश्व की सामूहिक कल्पना के द्वारा रची गई थी, **एक्स निहिलो** (ex nihilo), बिलकुल वैसी ही रचना बोर्खेज़ की एक कहानी हो सकती थी :

> "मैं, कोई एक नहीं हूँ। मैंने संसार का वैसा ही स्वप्न देखा था, मेरे शेक्सपीयर, जैसी तुमने अपने काम की कल्पना की थी : मेरे स्वप्न के रूपों में से एक तुम थे, जो कि, मेरी तरह ही, अनेक हो, कोई एक नहीं।"

बोर्खेज़, बहरहाल, सार्वजनिक ख्याति और अपने निजी स्व के विचित्र आपसी संबंध के बाबत, अनेक लोगों की अपेक्षा ज्यादा ही कुशग्रता से सचेत है। बोर्खेज़ की मान्यता है कि लेखक पाठक के द्वारा उपलब्ध सामग्रियों में से ही रचा जाता है; और उसने बहस की कि 'पढ़ना' उतना ही बड़ा सृजन है कि जितना 'लिखना' है। अनेक लोग जो अभिभूत-से होते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं, उन्होंने उसके लिखे हुए का शायद ही कुछ पढ़ा हो : उसके प्रति उनके आदर का आधार वे दूसरे लोग हैं जिन्होंने पढ़कर उसे महत्त्व दिया। लेकिन बोर्खेसियन संसार में ग़लतफहमी मानवीय चेतना के किसी पहलू और बहुमत विचार का बुनियादी अवयव है। यथार्थ तो विश्वास (faith) का एक एक्ट है। उसका सबसे बड़ा दृष्टान्त तो, गौण शैली-प्रकारों (माइनर जेनरे) के इस रहस्यमय प्रयोगकर्ता का, संसार के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में से एक के रूप में कायाकल्प है—याने कि मानवजाति के उस छोटे-से अभेद्य चुनिंदा समुदाय का, सदस्य बन जाना है—जैसे कि अर्नेस्ट हेमिंग्वे और ज्याँ-पाल सार्त्र, जो कुछ कहने के लिए आये थे, गोकि क्या कहने आये थे यह आसानी से बताया नहीं जा सकता, उन लाखों लोगों को कि जो साहित्य को

अमूमन अत्यन्त अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं।

जबसे उसने 'ख्यातिवान' का स्तर पाया तब से बोर्खेज़ ज़ोर देकर कहता आ रहा है कि वह उस पर अत्यधिक ध्यान दिये जाने से हैरतअंगेज़ है। कुछ तो, बेशक ही, यह एक नापी तौली हुई मुद्रा है; अपने काम के मूल्यांकन के बारे में अत्यधिक विनम्रता अपनी 'इमेज' के लिए महत्वपूर्ण रुख है। शुक्र है कि वह मजे लेता है, बल्कि प्रकट रूप में आनन्दित होता है कि वह उन लोगों के द्वारा हीरो बनाया जा रहा है जो उसका लिखा कत्तई नहीं पढ़ते, और, वह इस निरर्थक स्थिति पर स्वयं ही हँसता है। वह अपने ही तरीके से, अपने विकल्पों को खुला रखता है: दोनों ही के प्रति बेरुख रहते हुए, उन्हीं दोनों,—**'भुला दिये जाने'** अथवा **'कीर्ति पा जाने'**—के लिए अपने को तैयार रखता है। यह बढ़िया तरीका है— कहने की ज़रूरत नहीं— कि उससे ख्याति बढ़ी है। लेकिन यह किसी नई स्थिति के लिए अख्तियार की गई कोई सामाजिक मुद्रा भर ही नहीं है। उसने जो कुछ लिखा है उसके बाबत संशय (स्केप्टिसिज्म) उसकी साहित्यिक विधि के केन्द्र में ही छुपी हुई है।

बोर्खेज़ अपने काम को ऐसा मानता है कि जैसे वह कोई बड़ा (लेकिन बहुत बड़ा नहीं: 1974 में प्रकाशित उसका **'कलेक्टेड वर्क्स'** एक हज़ार पृष्ठों से ज्यादा नहीं है) उपन्यास है। उसका केन्द्रीय चरित्र, उसका एक अकेला हीरो—जार्ज लुई बोर्खेज़ है, एक ऐसा काल्पनिक जीव जिसे भोले-भाले लोग ब्यूनेस एअर्स की गली में घूमता हुआ, चिकनी चुपड़ी महिलाओं के सामने भाषण देता हुआ, मोटा-सा साहित्यिक पुरस्कार लेता हुआ, अथवा कोई भेंटवार्ता देता हुआ विनम्र खामोश सज्जन समझ लेने का भ्रम पालेंगे। उपर्युक्त संस्करण के उपसंहार में, बोर्खेज़ ने एक ऐसे चिली साहित्यिक इतिहासकार का मुखौटा ओढ़ा है जो एक शताब्दी उपरान्त लिखता है कि:

> "यह बात, कि अनेकानेक मोनोग्राफों और वाद-विवादों द्वारा प्रशंसित प्रख्यात बोर्खेज़ ने अपना जीवन सुख से बिताया, आज विचित्र ही लग सकती है। यह तसदीक किया जाता है कि सबसे अधिक अचम्भा बोर्खेज़ को स्वयं ही हुआ, और कि उसे हमेशा ही डर लगा रहा कि उसे एक धूर्त (फ्रॉड) या कि एक पैबन्दगर, अथवा कि दोनों ही का कोई एकल मिक्स्चर घोषित कर दिया जायेगा।"

बोर्खेज़ निश्चित ही, फ्रॉड नहीं है। कैसे हो सकता है? ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ कि उसने यह दावा किया हो कि उसके काम का कोई विशिष्ट महत्व है: यदि दूसरों ने उसे पसंद करते हुए सोचा हो कि वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है तो यह उनका बिजिनेस है। उदाहरणार्थ: यदि जार्ज स्टेनर घोषणा करता है कि **"पिएरे मेनार्ड, कुओते का रचेता** मानवी प्रकल्पना के अद्भुत चमत्कारों में से एक है... वह एक अद्वितीय कथा है कि जिसमें बोर्खेज़ की लुकी-छिपी प्रतिभा के कई रूप सर्वथा पूर्णत: रूपाकृत होते हैं", तो बोर्खेज़ क्यों आपत्ति करेगा? और यदि ब्लादिमीर नबोकोव किसी लेखक शावद ओसबर्ग, के बाबत शिकायत करता है: "पहले तो वीरा और मैं उसे पढ़ना शुरू करते हुए बहुत खुश हुए, हमें लगा कि हम किसी बढ़िया बरामदे में बैठे हुए हैं, लेकिन आगे हमें पता चलता है कि मकान तो है ही नहीं", तो वह भी उतना ही संतोषप्रद हुआ! क्या बोर्खेज़ ने कभी भी दावा किया कि उसके सुन्दर तराशे हुए बरामदे से जुड़ा हुआ कोई मकान है ही?

बोर्खेज़ पैबंदगर भी नहीं है। वह सदैव ही अत्यंत सजग शिल्पी रहा है; अपनी कहानियों

निबंधों और कविताओं को कई-कई बार तराश कर और फिर भी उल्लेखनीय आनाकानियों के साथ ही प्रकाशक को भेजता आया है : उसने एक बार बताया था कि यदि प्रकाशकों का आग्रह न होता तो वह कोई भी रचना पूरी नहीं कर पाता। उसने लिखा है कि जिन शब्दों का वह उपयोग करता है उन्हें खुद तौलता है, घंटों उनसे उलझता है कि उन्हें काम में ले अथवा नकार दे। काम के बाबत वह हमेशा अपनी समूची संस्कारी शालीनता के साथ चिन्तन करता आया है; वह वास्तव में एक अत्यंत गंभीर और जबर्दस्त लेखक है।

उसके तकनीकी कौशल, उसकी बुद्धिमत्ता, और उसकी कल्पनाशीलता पर ज़रा भी संशय नहीं किया जा सकता। अपने काम को'''वह यह कहकर विशेषतया नकारता है कि वह "ओईयुवर" है लेकिन जो वास्तव में बिलकुल समूचा गठा हुआ है। उस काम का अधिकांश अत्यन्त उज्ज्वल है। वह अद्वितीय है: हमारी सभ्यता के समूचे काल में उस जैसा कोई काम नहीं रचा गया। पर तब भी एक सवाल उठता है। उसकी समूचीप्रवीणता के बावजूद क्या उसका काम कुछ ज़्यादा ही भदेस, स्वच्छंद, संकुचित नहीं है कि अपनी ख्याति के विशाल भवन का बोझ उठाये? क्या वह कौतुकों के अन्वेषक से अधिक बड़ा कुछ है भी? जो रूप उसने गढ़े वे निश्चित ही मनोहर हैं, लेकिन क्या उनमें समायी हुई अंतर्वस्तु गंभीरता से ली जाने योग्य है? वे शायद हैं, गोकि उतनी नहीं जैसा कि कुछ बोर्खेसवादी कहेंगे; लेकिन प्रतिरक्षक तर्कों को प्रस्तुत करने के पूर्व बोर्खेज़ की असाधारण सीमाओं के बारे में विचार कर लें। निश्चय ही उसके कद के ऐसे बहुत कम लेखक होंगे कि जिन्होंने अपने काम में से अपने युग के प्रमुख आग्रहों को इतनी दृढ़ता से त्याग रखा हो।

परम्परागत विधाओं (जेनेरे) के प्रति उसका तिरस्कार भाव एकदम तीव्र रहा है: बोर्खेज़ ने एक भी उपन्यास नहीं लिखा, नाटक भी नहीं, कोई 'बड़ी' कविता नहीं, कोई आत्म-कथात्मक या आलोचना पुस्तक भी नहीं, कोई दार्शनिक प्रबन्ध भी नहीं। इसके अतिरिक्त, और यह अत्यन्त उल्लेखनीय है, कि उसने बड़े गर्व के साथ उन सभी थीम की कि जो कुल मिलाकर आधुनिक साहित्य की विषयवस्तु है, उनकी उपेक्षा की। उसने यौन-संबंधों के बारे में कुछ नहीं लिखा, सामाजिक अतिरेक के विषय में भी नहीं, राजनीतिक विचारधाराओं, अथवा "यथार्थ जीवन" के टेक्सचर पर भी उसने कुछ नहीं लिखा। उसने प्रकृति में भी कोई रुचि नहीं ली; उसकी सेटिंग्स इतनी उजाड़ और बेहलचल है जितनी कि डी शिरिकी की चित्रकला। उसने व्यक्तित्व को भी तरजीह देने से इन्कार किया : उसके "चरित्रों" में से कोई भी (बोर्खेज़ को छोड़कर) किसी तरह के स्वायत्त अस्तित्व को अख्तियार करने के नजदीक नहीं पहुंच पाता, और उसने सृजनात्मक कलाकारों के मन में बार-बार उठने वाली इस इच्छा को ज़रा भी संतुष्ट नहीं किया। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि बोर्खेज़ किसी ऐसी साहित्यिक परंपरा का रचनाकार है कि जो आज तक अज्ञात है, वह उससे कतई भिन्न है कि जिससे हम परिचित हैं और कि जिसमें हम अपना बौद्धिक जीवन जी रहे हैं।

यह तब तो समझ में आ सकता था यदि बोर्खेज़ इस तरह "आदिम" होता कि जो अपनी अनभिज्ञता की वजह से मौलिकता की ओर आकृष्ट हुआ हो। लेकिन बोर्खेज़, चाहे कुछ हो, उस अर्थ में "आदिम" बिलकुल ही नहीं है; वह अपनी पीढ़ी के किसी भी व्यक्ति की तरह दसियों साहित्यिक परंपराओं का ज्ञाता है। फिर भी यूरोप अथवा अमेरिका में उसके बचपन से लगाकर आगे तक जो कुछ लिखा गया, उसके अधिकांश की उसने उपेक्षा की। क्योंकि वह

जॉयस और प्रूस्त से परिचित है, काफ्का और वर्जीनिया वुल्फ (जिसका कि उसने अनुवाद किया है) को जानता है, लेकिन वह ज्यादातर उन्हीं लेखकों से प्रभावित रहा जिनकी पुस्तकें उसके पिता की निजी समृद्ध लाइब्रेरी में सजी हुई थीं : ब्राउने, डीक्विन्सी, कॉलरिज, स्पेंसर, शॉ, वेल्स, किपलिंग, स्टीवेंसन, चेस्टरटन, और वे विद्वान कि जिन्होंने एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका के लिए लेख लिखे; ये सभी उसकी दुर्नामी (नटोरियस) विद्वता के स्रोत हैं । और ये ही वे स्रोत हैं कि जिनकी ओर वह अक्सर पलटता रहता है ।

उसका पिता, जार्ज बोर्खेज, अंग्रेज़ी का प्रोफेसर था, इसलिए अंग्रेजी ही वह पहली भाषा थी जो किशोर जार्ज लुई ने पढ़ने के लिए सीखी। अपने युग के हिसाब से जार्ज बोर्खेज़ एक असामान्य कुलपिता था कि जिसने अपने पुत्र को वह सब पढ़ने दिया जो उसने चाहा—इस विचार से अविचलित कि वह उसके लिए "बहुत पुराना" हो सकता है । सो, वृहत्त साहित्य ग्रंथों (कि जो अनेकों विश्वविद्यालयी स्नातकों की खोपड़ी तान सकते हैं) के अतिरिक्त, किशोर बोर्खेज को "अरेबियन नाइट्स" के सर रिचर्ड बर्टन द्वारा किये हुए कामुक (मोनोग्राफिक) अनुवादों को पढ़ने की अनुमति भी मिली हुई थी जिसे उसने विशाल आनंद के साथ पढ़ा (संकीर्ण कामोत्तेजक उबाऊ परिछंदों को फलांगते हुए और जादुई प्रसंगों में डूब कर) । इन एडवेंचर्स को छोड़कर उसका घर सुरक्षित सुविधाजनक स्थान था जो कि उसके अनेक थाइनों से ही डिस्टर्ब होता था । बोर्खेज उनमें भयानक आतंक के साथ देखता था; चारों ओर वही वही, क्या सिर्फ वही अस्तित्ववान है ? उसके प्रिय बिंबों में से एक का उद्गम यही था । वहां भी उसे ऐसा लगा जैसे कि ब्रह्माण्ड एक विशाल लायब्रेरी है जहां उस व्यक्ति के पास समूचा ज्ञान उपलब्ध है जिसे सिर्फ नज़र भर फिरानी है । और कि जब वह सिर्फ एक छोटा बालक ही था कि टाइगर, भारत भ्रमण के किसी ग्रंथ में से उसकी ओर कूदता हुआ, उसके साहित्य के लिए, विनाश का, समय का, प्रतीक बन गया ।

बोर्खेसियन रूपालंकारों में से सर्वाधिक विख्यात रूपालंकार : भूलभुलैया लेबिरिंथ उसके दिमाग में बहुत बाद में आया । गोकि, वह तभी से उसके मन में घुमड़ रहा था : निश्चय ही, ब्यूनेस एअर्स, विशाल लंबा चौड़ा शहर, हाल ही बना-तराशा हुआ और अजीब तरीके से अपने को दुहराता हुआ कि जिस की अनेक सड़कें-मकानात एकदम एक दूसरे की अनुकृतियां हों, वह उसे अन्य अनेक शहरों की अपेक्षा ज्यादा ही चक्रव्यूहाकार लगा । वह एक बालक ही था कि तब उसने उन अकड़बाज कातिलों के किस्से सुने थे कि जो खूनी तौर पर और कभी-कभी आत्म-हत्यारी हद तक अपनी ही सूक्ष्म आचार-संहिताओं के प्रति समर्पित थे, और वे समीप ही दुबके हुए थे । वह किताबी किशोर···वह निर्मोही आदमी···शायद ही उनके संपर्क में आया हो, सो उसकी कल्पना में वे महाकाव्यी हीरो बन गये···बलिष्ठ और खूंखार, नोर्वेइयन वीर-गाथाओं के नायकों की तरह ।

अपने माता-पिता के घर में उसका सर्वाधिक रूझान तात्विक-आध्यात्मिक चिंतन की ओर घूमा···किसी खेल की तरह···जो एक ही क्षण में गंभीर भी था, बेपरवाह भी । यह चिंतना अर्जेंटीनिया के स्कूली छात्रों के मन में उसी तरह से बसी हुई है कि जिस तरह से वे डाकुओं के एडवेंचरों से अभिभूत होते हैं । बोर्खेज के उस चिन्तन को उसके घर में अक्सर मिलने जाने वाले मेकदोनिओ फेरनेंदेज के द्वारा खूब उत्तेजना मिली थी जो कि एक महान वार्तालापी था कि जिसके तीक्ष्ण एवं सरस संवादों और विचित्र जिज्ञासु अभिरुचियों का अर्जेंटीनियन

साहित्य पर अच्छा खासा प्रभाव पड़ा था, लेकिन वह, दुर्भाग्य से, लेखन के प्रति उदासीन था।

यह नामुमकिन नहीं है कि किसी लेखक के काम का भ्रूण रूप उसके बचपन में ही सूक्ष्मस्तर पर अंकुरित हो चुका हो। लेकिन ऐसे लेखक विरले ही होंगे कि जिन्होंने अपने उस ज्ञान में शायद ही कुछ अतिरिक्त जोड़ा हो। बोर्खेज़ के बाद के अनुभवों [जैसे कि अपनी किशोरावस्था में यूरोपवास (महायुद्ध के दौरान परिवार का स्विटज़रलेंड में, और स्पेन में जा बसना कि जहां युवा बोर्खेज़ को सुहावना साहित्यिक सत्संग मिला था] के दौरान उसके महान लेखन में लगभग कुछ भी नहीं जुड़ा। जिनेवा में रहते हुए सिर्फ दो ही अन्य लेखक उसके सोच में दाखिल हुए—व्हिटमन और शॉपनहावर। अन्य अनेकों को, कि जिनको उसने पढ़ा, वे उस पर अमिट प्रभाव नहीं डाल सके। बोर्खेज़ के लिए बीसवीं सदी के अनेकानेक 'आधुनिक' लेखकों का महत्व नहीं था। उसकी बौद्धिक पृष्ठभूमि उन्नीसवीं सदी है। यही बात उसके बहुत सारे काम के विचित्र रस का भेद खोलती है। उन्नीसवीं सदी में पाण्डित्य आज की अपेक्षा कम विशेषीकृत और अधिक पूर्वानुमानी था। वह साहित्य के समीप था। और, जब वह एशिया की सभ्यताओं पर चिंतन करता था तब उसमें अद्‌भुत तरह के लोगों के द्वारा खोज की यात्राओं का दर्प जैसा कुछ होता था।

बोर्खेज़ का पिता अपनी मृत्यु (1938) के पूर्व कुछ काल के लिए अंधा हो गया था, अतः अपनी कई आरम्भिक कविताओं में बोर्खेज़ ने ऐसा आभास दिया है कि जैसे वह भी एक न एक दिन अंधा होगा। उसी साल कि जब उसके पिता का देहान्त हुआ था, बोर्खेज़ एक अंधेरी सीढ़ी चढ़ते हुए एक खिड़की के पल्ले से टकरा गया और उसके सिर में इतनी भयानक चोट लगी कि वह एकदम मर ही गया होता। हलांकि वह भला-चंगा जरूर हो गया; आज भी वह हृष्टपुष्ट है, लेकिन उसकी नयन ज्योति कमज़ोर होती गई और अपनी साठ की आयु के बाद तो वह कतई पढ़ नहीं पाया, मेग्निफाइंग ग्लास के सहारे भी नहीं। अतः कई दशाब्दियों तक, उसे अपने दोस्तों और परिचितों की एक लंबी कतार का सहारा लेना पड़ा जो उसके लिए पढ़ते और लिखते रहे। इस कष्ट का उसके काम पर असर पड़ा; और उसने जितना स्वयं लिखा लगभग उतना ही अपने सहयोगियों (खासकर उसके आजीवन मित्र एडोल्फो बिऑय केसारेस) के सहारे लिखा। लेकिन, सही परखा जाये तो असर उतना नहीं हुआ जितना कि सोचा गया। उसका अंधत्व, उसकी 'चमकीली धुंध', कि जिसमें वह अपनी अधिकांश जिन्दगी बिताने को अभिशप्त था, उसने उसे ज्यादा ही अंतर्मुखी बना दिया, परिवेशी संसार से दूर, गोकि उससे उसकी दिशा में कोई उग्र परिवर्तन नहीं हुआ। 1938 के पूर्व लिखी गयी उसकी कहानियां निराकार हैं; बाद में लिखी गई वायविक (इथरीय) हैं। उसका पहले से ही बना हुआ एकान्त-भयभीत (क्लास्ट्रोफोबिक) संसार और भी ज़्यादा बंद-बंद हो गया। उसे घेरती हुई दीवालें और ऊंची होती गईं। उसने ही तो उन्हें बनाना शुरु किया था!

बोर्खेज़ की ख्याति का उसकी कविताओं से कुछ भी लेना-देना नहीं है गोकि उनमें से कुछ अवश्य ही आकर्षक हैं। और, उसकी वे कहानियां भी उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जो कि ब्यूनेस एअर्स के कम-ख्यात उपनगरों के जंगी पुरखों गाचो और चाकूबाजों के बारे में लिखी गईं हैं। अन्य लेखकों के विषय में उसके अनेक निबंध, चाहे आत्मकथात्मक हों चाहे आलोचानात्मक, महज इसीलिए पढ़े जाते हैं कि उनका लेखक बोर्खेज है वर्ना वे भी अपने आप ही रोचक नहीं हैं। बोर्खेज़ की ख्याति खासकर उसके 'फिक्शन्स' पर टिकी है—लघु कहानियों पर—जिनमें से

कुछ तो एक पैरेग्राफ भर ही लंबी हैं और वास्तव में जो छंदवेश में शोध निबंध हैं और उनका संबंध लोगों के बजाय विचारों से है—और उसने अपने सच्चे खरे निबंधों में ऐसे परिचित विषयों पर लिखा है जैसे **"जैनो'स पैराडाक्स ऑफ एशिले एंड टारटाइज,"** **"द इम्प्लिकेशन्स ऑफ इन्फिनिटी"** (यदि अक्षरों के हर संभव संयोग को लिख कर किसी अनंत लाइब्रेरी में जमा कर दिया जाये तो समूचा ज्ञान—अतीत, वर्तमान और भविष्य का—उसमें रखा जा सकता था।) और **"द इटरनल रेकरेंस,"** **"द नेचर ऑफ टाइम, ऑफ डेथ; आफ रिॲलिटि।"** इन निबंधों में से कुछ में अन्य लेखकों के कुछ उद्धरण भी हैं जिन पर बोर्खेज़ ने कुछ सरसरी टिप्पणी जोड़ दी है।

अतः उसकी पसंद की थीम वे ही हैं कि जो अनेक विचारशील लोगों को विभिन्न जगहों पर हज़ारों वर्षों से परेशान करती आ रही हैं। वे चिन्तनशील दर्शनशास्त्र की अर्थशून्य बातें हैं। लेकिन हमारी सभ्यता के युग के पढ़े-लिखे लोगों में जब से धार्मिक तेवर का पतन हुआ तब से अधिकांश पाश्चात्य बौद्धिकों ने उन सवालों को नकार दिया है—उन सवालों को, कि जो कभी भी सुलझाये नहीं जा सके, कि वे अबूझ हैं, और इसीलिए वे महज उनकी किशोरावस्था तक ही पूछे जाने के लिए ही हैं, बाद में उन पर कदाचित् ही और तभी वापस लौटा जाता हो कि जब वे खूब नशे में हों, अथवा कि गंभीर रूप से बीमार हों, अथवा किसी धार्मिक अनुभूति के वशीभूत हों। कुछ पूर्वी सभ्यताओं में, बहरलाल, उन सवालों पर अभी भी गंभीरता से चिंतन होता आया है, और सम्मानित लोग, बगैर इस संकोच के कि उन्हें अत्यंत विचित्र करार दे दिया जा सकता है, उन पर जीवनपर्यन्त विचार करते रहते हैं; इन देशों में "पश्चिमी भौतिकवाद" के खिलाफ महत्त्वपूर्ण एतराज ही यह है कि वे (पश्चिमी लोग) चरम प्रश्नों में अपने को लीन करने देने से ही इन्कार करते हैं। अतः यह मात्र संयोग नहीं है कि बौद्धिक संसार में बोर्खेज़ का इतनी ऊंची प्रतिष्ठा पा लेना ऐसे काल में हुआ है कि जब अनेक पश्चिमी लोग, अपनी सभ्यता से मोहभंग की स्थिति में हैं, और उस खामोश समझौते—यानेकि उन स्वयं सिद्धियों की संदिग्ध प्रकृति को नज़र-अंदाज कर दिया जाये कि जिन पर वह सभ्यता टिकी हुई है—से असंतुष्ट हैं; वे पश्चिमी जन अब "पूर्व की बुद्धिमत्ता" को पहले से भी ज़्यादा आदर के साथ देखने लगे हैं।

निश्चय ही, बोर्खेज़ ही वह पहला पश्चिमी लेखक नहीं है कि जो सब-कुछ मान लेने को झुक गया हो। बिशप बर्कले उतना ही सालिप्सिस्टिक (वह सिद्धांतवादी कि भौतिक ज्ञान मिथ्या है) था कि जितना बोर्खेज़ है; और बोर्खेज ने उसके प्रति आभार व्यक्त किया है। रोमान्टिक बौद्धिकों में माया और यथार्थ के दरम्यान आदतन दर्शाये गये सहज बोध को निसंदेह स्वीकार करने से इंकार करना कुछ ऐसा था कि जिसकी भरमार थी। पश्चिमी नगरों में हमेशा ही तांत्रिकों, ब्रह्मज्ञानियों, और रहस्यवाद के उपासकों के उपांत समुदाय रहे हैं कि जिनके प्रति बोर्खेज़ के आग्रह बिलकुल स्पष्ट नज़र आते हैं यद्यपि उनके सदस्यों ने बोर्खेज़ के द्वारा उनको पेश किये जाने के तरीके से व्यग्रता महसूस की होगी। लेकिन बोर्खेज उसके साहित्यिक पूर्वजों से भिन्न है, ठीक वैसे ही कि जैसे वह उन गहरे भद्रजनों से भी भिन्न है जो यह समझते हैं कि उन्होंने महान पिरामिड की विमाओं के सतर्क अध्ययन के फलस्वरूप ब्रह्माण्ड की भीतरी कार्य-पद्धति को पूरी तरह समझ लिया है। उसने हमेशा ही सहजज्ञान (कामनसेंस) की ज़मीन पर अपने दोनों ही पैरों को मज़बूत जमा रखा है चाहे उसका दिमाग कितने ही विशाल रहस्यात्मक क्षेत्रों में विचरण करता रहा हो। वह इस मशक्कत को कर पाया, शुक्रिया उसकी प्रख्यात

विडम्बना की, कि वह हमेशा यह निहित मानता है कि वह अपने स्वयं के ही विषयगामी निष्कर्षों में वास्तव में ही यकीन नहीं करता : वे लेखक बोर्खेज़ की तरंगें हैं, जो आखिरकार बोर्खेज़ का ही एक आविष्कार है।

वस्तुतः उसके समूचे काम में से जो परिच्छेद सर्वाधिक उल्लेखनीय रहा है वह एक 'इलोक्वेंट' है, शब्दचातुर्य है, गोकि वह अनोखा है, और जो बहुत सारा प्रयास उसने अकादमीय मतों से खंडन में किया था उसकी पुष्टि करता है :

"और फिर भी, और फिर भी—लौकिक पारम्पर्य को नकारना, अहं को नकारना, खगोलीय ब्रह्मांड को नकारना प्रत्यक्ष हताशा और प्रच्छन्न शमन है—समय ही पदार्थ है कि जिससे मैं बना हूँ। समय ही दर्पण है कि जो मुझे दूर ले जाता है, किन्तु मैं नदी हूँ, वह एक शेर है जो मुझ पर गुर्राता है, किन्तु मैं ही शेर हूँ; वह आग है जो मुझे झुलसाती है, किन्तु मैं ही आग हूँ। संसार, ओह, वास्तव में है; मैं, ओह, बोर्खेज़ हूँ।"

समर्पित बोर्खेसियन के लिए, यह मानकर कि उसके नेता ने फिर से **"समय को नकारने"** में सफलता हासिल की है, उसके लिए बोर्खेज़ का यह समर्पण जो सिर्फ 'प्रत्यक्ष' शब्द से हलका मालूम होता था, वह निश्चय ही हैरान करने वाला था। लेकिन लेखक बोर्खेज़ ने कई वर्षों तक कड़ा परिश्रम करके समय को बाँध दिया था और इस तरह अमरता हासिल की थी; अतः किसी बोर्खेसियन को अपने को यकीन दिलाने में ज्यादा कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि परंपरावाद की ओर बोर्खेज़ की यह अप्रत्याशित वापसी महज एक कलात्मक घुमाव है जो उसकी नकल करने वालों को भ्रम में डालने के लिए है : सच्चा बोर्खेज़, जहाँ तक उसका अस्तित्व है, वह तो यथार्थ से मुक्ति को अंततः हासिल कर ही चुका है।

हर एक का उसका अपना बोर्खेज़ है, कि वह अपने उपयोग के लिए उसमें से जो वह चाहे ले ले और शेष को छोड़ दे। अधिकांश अर्जेंटीनीयनों के लिए वह कोई **टोटम** और मनो-विनोदी है। कुछ के लिए वह विचित्र किस्म की अमूर्त कहानियों का कथाकार है जो उनके राष्ट्रीय अतीत के एकदम पौराणिक काल में सेट की हुई हैं, कि वह स्वतंत्रता के युद्धों के बाद अपने देशवासी वीरों की सैनिक उपलब्धियों का यशगान करने वाला—उनके देश की गलियों और बगियाओं में गाता हुआ कवि है, कि वह अपने देशवासियों को **केस्टिले** की भाषाई सरदारी के जरिये दबाने वाले घमंडी पंडितों से देशज भाषा को बचाने वाला रक्षक है। उसका कदाचित् सर्वाधिक खूंखार निबंध एडोल्फ हिटलन के खिलाफ नहीं, उसके अर्जेंटीनी खुशामदगीरों के खिलाफ भी नहीं, बल्कि एक अभागे इस्पहानी, डा० एमेरिको कास्ट्रो के विरुद्ध है जिसने यह सुझाने की जुर्रत कर दी थी कि प्लेटाइन स्पेनिश भ्रष्ट हो गई है।

ऑक्टेवियो पॉज और गेब्रिएल गार्सिआ मारक्वेज जैसे लेटिन अमेरिकन लेखकों के लिए, बोर्खेज़ एक ऐसा विद्वान है कि जिसने लिखित भाषा में से अति अलंकृत हिस्पानिक रेहटरिक को छांट दिया, और उन्हें एक ऐसी भाषा दी जो फ्रेंच की तरह सुन्दर थी और अंग्रेजी की तरह लचीली, और उसने उन्हें अपने समाज के बारे में प्रतिबद्ध 'यथार्थवादी' उपन्यासों को अपनी लाइब्रेरी में जमा करने से थाम दिया। जबसे बोर्खेज़ ने दर्शाया कि फंतासी सम्माननीय है, तब से कुछ ही लेटिन अमेरिकी लेखकों ने पीछे मुड़कर देखा। पिछले बीस वर्षों से फंतासी प्रभावशाली विधा रही है, और वही अधिकांश अनूदित लेटिन अमेरिकी कामों का प्रमुख लक्षण है। हालांकि, खरे-खरे पंथों के अतिरेकी प्रतिबद्ध समर्थक (जैसे कि मार्क्सवादी) विरोध प्रगट करती हुई

आवाज़ें उठाते हैं, बोर्खेज़ की भर्त्सना करते हुए, कि वह एक वैश्विक कलावादी हैं : कि जो दीनहीनों के सच्चे दुख-दर्दों के प्रति उदासीन और लापरवाह हैं : किन्तु जब फंतासी की साज-सँवार करने वाले विख्यात साधकों में वामपंथी क्रांतिकारी गार्सिया मारक्वेज़ और जूलिओ कोर्तज़ार भी शामिल हैं तब उनका विरोध निरर्थक ही कहा जाना चाहिये । एक अन्य व्यक्ति है फ्रंकोइस मारिएक, जिसने बोर्खेज़ को विनोदी मुक्तिदाता (लॉफिंग लिबरेटर) के रूप में देखा और बोर्खेज़ को बधाई दी कि उसने लेटिन अमेरिका में पीछे से घुसने वाले नेचुरलिज़्म को उखाड़ फेंका, और उम्मीद की कि फ्रेंच में भी शीघ्र ही ऐसा ही विस्फोट दोहराया जायेगा ।

अमेरिकी अकादमिक विद्वानों के लिए बोर्खेज़ अन्वेषण-कार्य के लिए भरापूरा स्रोत है, ऐसी विषयवस्तुओं का रचेता कि जिनका अनेकानेक फलदायक तरीकों से विश्लेषण किया जा सकता है । किशोरों के लिए कि जो साहित्य से निडर हैं, वह एक ऐसा गुरु और गाइड है कि जो, अपने ही तरीके से, उनकी दार्शनिक समस्याओं को अत्यंत गंभीरता से लेता है जिन्हें वे बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण महसूसते हैं, बजाये कि उन उदार बुजुर्गों के कि जो इस संसार से समझौता करके उन समस्याओं की उपेक्षा करते हैं । वह किसी अत्यंत उच्च स्तरीय तरीके से उनके 'वैकल्पिक यथार्थों' की भूख को और मनुष्य की परिस्थितियों की उदार व्याख्याओं को तृप्ति देता है, कोई ऐसा आस्वादन कि जो **एच० राईडर हेगार्ड**, **कार्लोस कस्टानेडा**, और, **"राइडर्स ऑफ द लास्ट आर्क"** के निर्माताओं के द्वारा अधिक सामान्यता से संतुष्ट किया जाता है । कदाचित्, बोर्खेज़ के काम और कॉमिक-स्ट्रिप कलाकारों के दरम्यान एक समानता के बाबत् कोई थीसिस लिखी जा चुकी होगी; यदि नहीं तो एक लिखी जा सकती है ।

मेरे लिए—और यह मैं स्वीकार करता हूँ कि बोर्खेज़ के प्रशंसकों में से मैं इस अंतिम प्रकार के व्यक्तियों के ज्यादा समीप हूँ और तभी मैं कहना चाहता हूँ—कि बोर्खेज़ एक ऐसा लेखक है जिसने पश्चिमी और पूर्वी विचार का प्रभावशाली संयोग बिठाया है । अन्य लेखकों ने पूर्वी सेटिंग का उपयोग किया है, और यहाँ तक कि पूर्वी व्यक्तियों का बखान तक कर डाला है, लेकिन कुछ बुनियादी पश्चिमी अवधारणाओं को अनिवार्यतः सिद्ध माने रखा; उन लेखकों से एकदम भिन्न रहकर, बोर्खेज़ ने, अपनी कहानियों को जहाँ चाहा सेट किया और उन अवास्तविक जंतुओं को, कि जो उन कथाओं को भरते हैं, उन्हें जाने कौन से नाम दिये; उन कथाओं का रचेता बोर्खेज़ ऐसी अवधारणओं को प्रयुक्त करता है जो किसी प्राचीन चीनी अथवा जापानी किस्सों में हों तो तुच्छ करार दी जा सकती हैं, लेकिन वे इतने चकित रूप से उस लेखक की लेखनी से निराली हो उठी हैं जो पश्चिमी विचार से भली-भांति और बखूब परिचित हैं ।

इस प्रकार बोर्खेज़ की कथाएँ उसके कुछेक निबन्धों की तरह, ताओवादी संतों और जेन गुरुओं के लेखन से विचित्र तरह से मिलती जुलती हैं । उदाहरणार्थ वह मानता है कि दैनंदिन यथार्थ बिलकुल ज़रा भी सच नहीं है, और कि उसके सर्वोच्च स्तर पर वह नीचे क्या है अथवा पार क्या है उसके लिए हद-से-हद कुछ सुराग भर ही दे सकता है । उसके लिए, जैसा कि उनके लिए, दृष्टिगोचर ब्रह्माण्ड कोई हताश जटिल पहेली है, और कदाचित् इस फैशन से गढ़ी गई है कि मनुष्य उसके बाबत् अनुमानते ही जायें और कुछ लोग उसे समझने के निरर्थक प्रयास करते ही जायें । उनकी तरह ही, वह क्रमक्रमानुगत-समय को भ्रम मानता है—कि वह ऐसी सुविधा है जो पुल बनाने की अपेक्षा चीज़ों को समझने में बाधा है : समय की थीम, अघोषित कर्त्तव्य की थीम कि समय को खदेड़ दो, एक ऐसा सोता है जो उसके काम में अत्यन्त मनोवेग से बहता

रहता है, और सतह पर उसके अधिकाँश टुकड़ों में फूटता है। ताओवादियों की तरह वह अपने इस स्वप्निल संसार की क्षण-भंगुरता के प्रति बेचैनी से सचेत है, और उसने कभी-कभी चुंगत्सु को दोहराया भी है :

"मैंने स्वप्न देखा, मैं एक पतिंगा हूँ, एक फूल से दूसरे फूल पर फुदकता हुआ। फिर मैं जागा। क्या मैं अब वही आदमी हूँ जिसने स्वप्न में देखा वह एक पतिंगा था, या कि मैं एक पतिंगा हूँ जो अब स्वप्न देख रहा है। कि वह एक आदमी है।"

यह चौंका देने वाली संभावना उसकी विख्यात कहानियों में से एक (द सर्क्यूलर रूइन्स) में उजागर की गई है, जिसमें एक भारतीय रहस्यवादी आदमी है कि जिसने एक अन्य आदमी को रचना चाहा "उसको अत्यंत सतर्क ईमानदारी से स्वप्न में देखते हुए, मगर पाया कि वह तो महज़ किसी और का स्वप्न था। यहाँ तक कि वैयक्तिक व्यक्तित्व, एक ऐसा प्रतिबोध कि जो हममें से अधिकाँश को सर्वाधिक प्रिय है और जो हमारी सभ्यता की बुनियाद है वह भी बोर्खेज़ की नज़रों में अवहेलना से देखा जाता है कि जैसे वह एक ताओवादी संत है जो सांसारिक बाधाओं को पार कर उड़ रहा है जैसे कि वह भावबोधों का एक अस्त-व्यस्त समूहन है—सदैव बदलता हुआ और ग्राह्य होने से एकदम असंभव। इसके अनुसार वह अनेक वर्ष पूर्व दिये गये अपने वक्तव्यों की जिम्मेदारी से इन्कार करता है : वह बोर्खेज़ तो कोई अन्य आदमी था।

बोर्खेज़ ने, बहरलाल अपने दृष्टिकोण का विकास, पूरब में अपने लंबे प्रवास के बाद नहीं किया, अथवा पूर्वी साहित्य के व्यवस्थित अध्ययन के द्वारा नहीं किया। वह किसी पूर्वी साधू की शरण में भी कभी नहीं गया। उसका वह दृष्टिकोण डिक्विंसी, कॉलरिज विशप बर्कले, और शॉपनहर जैसे निश्छल पश्चिमी लेखकों के साहित्य से प्रोत्साहित हुआ, गोकि ऑर्थर वेली ने उसे अपने विचार में और सुदूर पूर्व के विचार में याने दोनों के दरम्यान अत्यंत समीपता लाने में खूब उत्तेजित किया। पिछले कुछ वर्षों में, हालाँकि, पूर्व के साथ उसकी एकसमता अधिक सुस्पष्ट होती गई। वह हाइकू लिखने की कोशिश कर रहा है, जापानी से अनुवादों की एक पुस्तक पर काम कर रहा है (एक जापानी-भाषा बोलने वाले किसी सहयोगी की मदद से), और जापान की पाँच सप्ताह की यात्रा कर आया है। फरवरी, 1982 में बोर्खेज़ ने अपने देशवासियों को संबोधित किया :

"मुझे जापान में किसी उच्चस्तरीय सभ्यता का भास होता है। मुझे ऐसी उम्मीद है कि पूर्व हमें बचा लेगा क्योंकि पश्चिम तो पतन की राह पर है। मैं सिर्फ हम लोगों के लिए ही नहीं बोल रहा हूँ, बल्कि संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए भी—एक ऐसा देश कि जिसे मैं अत्यंत चाहता हूँ—क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि वह अपने सम्पूर्ण सर्व-नाश की ओर जा रहा है।"

बोर्खेस का आग्रह, कहने की जरूरत नहीं, कि जापान की उल्लेखनीय आर्थिक उन्नति से ज़रा भी संबद्ध नहीं है। उसे जिस बात ने सर्वाधिक प्रभावित किया वह यह है कि वहाँ एक बड़ी संख्या में लोग कविताएँ लिखते हैं।

बोर्खेज़ के द्वारा जापान की प्रशंसा ने अब उस तरह कोई बखेड़ा खड़ा नहीं किया जैसा कि पूर्व में उसकी इग्लैंड और सं० रा० अमेरिका की प्रशंसा ने किया था। पिछले कुछ वर्षों में अर्जेन्टाइना का "स्वदेश"—भाव टूटा है: विदेशों की प्रशंसाएँ कि जो स्वदेश के हित में ही कन्ट्रास्ट को अंतर्निहित किये हुए हैं, वे अब वैसा अपराध नहीं हैं जैसी कि वे पहले कभी थीं। वास्तव में, 1982 में आते-आते बोर्खेज़ उन लोगों से बाजी मार ले गया है जो बाहरी दुनिया को किनारे

रखना चाहते रहे थे। जब उस पर 'विश्वयार' होने का आरोप लगाया गया तो वह बोला कि बिना किसी तकलीफ के विदेशों से जो जरूरी हो वह ले लेना अर्जेन्टीनी विशेषता रही है, और कि राष्ट्रवादिता किसी भी हालत में, आयातित भ्रष्ट खयाल है। निश्चय ही उसकी जड़ें गहरी हैं तभी तो वह पश्चिमी और पूर्वी, दोनों सभ्यताओं के ऊपर इतनी आसानी से मंडरा सकता है। अर्जेन्टाइना, ऐसा तो नहीं है, कि उसकी अपनी संस्कृति ही न हो। किन्तु उसकी संस्कृति इतनी नई और सारग्राही अवश्य ही है कि वह विद्वान अर्जेन्टाइनियों को अन्य देशों की ओर देखने को बाध्य कर सके।

इंग्लिशमेन, फ्रेंचमेन और जर्मनों में तो अपनी ही परंपराओं में पूरी तरह डूबे रहने की प्रवृत्ति रही है, लेकिन अर्जेन्टीनी उनसे भिन्न हैं: वैसे उनमें उनकी अपनी परंपरा इंडीयनों से तो मिली ही, लेकिन उनकी परंपराओं का अधिकांश यूरोप से ही आया। उनके अधिकांश लोग यूरोप की ओर आकृष्ट रहे हैं, सिर्फ कुछेक को छोड़कर कि जो सिर्फ स्पेन से ही चिपके हुए हैं। 'मातृ देश' के प्रति उनका आदतन रवैया अमेरिकनों से कुछ खास वजहों से भिन्न रहा है: जब अमेरिका का अग्रिम दस्ता ग्रेट ब्रिटेन से अपने को अलग कर स्वतंत्रता हासिल कर चुका था, तब वे, अपने इंग्लिशमेन होने के आनुवंशिक अधिकारों को बनाये रखने की हठ कर रहे थे, कि ग्रेट ब्रिटेन संसार के सर्वाधिक 'विकसित' देशों में से एक है कि जिससे उन्हें बहुत कुछ सीखना है। अर्जेन्टीनी आजादी के नेतागण, बहरहाल, इग्लैंड, फ्रांस और सं० रा० अमेरिका से आये विचारों के प्रभाव में थे, जो स्पेन को ऐसा पतित और पिछड़ा देश मान रहे थे कि जिसकी विरासत को वे खड़े होकर नकारना चाहते थे। यह भान, (स्पेन के गृहयुद्ध के पूर्व के उन चालीस वर्षों को छोड़कर कि जब उसने विलक्षण **रेनेसाँ** उत्पन्न किया था) वहाँ सदैव ही बना रहा। मजे की बात यह है कि कई अमेरिकीयों द्वारा भाषा का अंग्रेजी लहजा 'एरिस्टोक्रेटिक' माना जाता है, जबकि वे स्पेनी उच्चारण को हास्यास्पद आप्रवासी पंसारी की भाषा समझते हैं, और कईयों को किंग जुआन कार्लोस के द्वारा उसका अपनाना बेतुका लगता है। इसीलिए अर्जेन्टीनीयों के लिए यह निहायत स्वाभाविक है, कि वे स्पेनी-भाषी दुनिया के बाहर भी विचार और प्रेरणा के लिए झांकें, और बोर्खेज़, इस मामले में, अपनी किस्म का सिर्फ एक ही अकेला अर्जेन्टीनी है कि जो बचपन से ही अपनी भाषा के अतिरिक्त एक विदेशी भाषा को भी बखूबी समझता आ रहा है।

पश्चिमी किनारों पर खड़ा होकर—गोकि उसके एक भाग पर खड़ा होकर, और उनमें कत्तई पूरी तरह रमा न होकर—लेटिन अमेरिकी लोग सारे संसार में कहीं से भी वह सब-कुछ चुनकर उठा सकते हैं कि जो उन्हें उनकी नई सभ्यता को गढ़ने में उपयोगी हो। अतीत में, उन्होंने विशेषकर यूरोप की ओर देखा : उनके अधिकांश विद्वानों ने फ्रांस और इंग्लैंड की ओर; तो कुछ ने जर्मनी की ओर भी देखा। और अभी-अभी उन्होंने सं० रा० अमेरिका की ओर ध्यान जमाना शुरु किया है। और अब, कदाचित् वे सुदूर पूर्व की ओर देखें, सिर्फ जापान की ओर ही नहीं बल्कि अन्य देशों की ओर भी कि जो उसी अंतर्निहित परंपरा को धारे हुए हैं। यह कोई इत्तफाक नहीं है कि आज जीवित दो प्रख्यात लेटिन अमेरिकी लेखक, बोर्खेज़ और ऑक्टेविया पॉज ने पिछले कुछ दशकों से अपने को पूर्वी विचारों में लगातार रमाये रखा है। कुछ लेटिन अमेरिकनों ने अक्सर सोचा है कि वे किसी भी यूरोपियन, उत्तरी अमेरिकन अथवा कि जापानी या चीनी की अपेक्षा ज्यादा आसानी से "सार्वभौमिक आदमी" बन सकते हैं। बोर्खेज और पॉज का विकास यह इंगित करता ही है कि लोग उनके बारे में सही ही सोच रहे हैं।

एनकांउटर से साभार

रिश्वत देकर

□ जार्ज लुई बोर्खेज़
□ अनुवाद : इंदुप्रकाश कानूनगो

यह कहानी दो आदमियों के बारे में हैं, बल्कि यूँ कहें, कि वह दो आदमियों के बीच गुज़रे एक वाकये के बारे में है। मूल वाकया, खुद-ही या उसका अनोखापन, उसके नायकों के चरित्र से कुछ कम नहीं है। उनमें से प्रत्येक ने मिथ्या अभिमान के वश में आकर पाप किये, अलबत्ता अलग-अलग तरीकों से और उनके नतीजे भी अलग-अलग निकले। इस किस्से (सच में ही यह किसी किस्से से ज्यादा बड़ा कुछ है भी नहीं) को उत्पन्न करने वाली घटनाएँ कुछ समय पूर्व ही घटीं। मेरे ख्याल से, ऐसा सिर्फ वहीं हो सकता था कि जहाँ वह हुआ—अमेरिका में।

उन दोनों में से एक का नाम डा० एजरा विनथ्राप था। ऑस्टिन के टेक्सास विश्व विद्यालय में, उसके साथ खूब देर तक बातें करने का अवसर मुझे मिला था। यह 1961 के आखीर की बात है। विनथ्राप **पुरानी अंग्रेजी** (उसे **एंग्लो-सेक्सन** कहना रास नहीं आया क्योंकि यह पद दो भागों से बने किसी नकली गठजोड़ का भास देता था) का प्रोफेसर था। मुझे याद आता है कि उसने भाषा के बाबत मेरी अनेक ग़लतियों और उतावली धारणाओं को, उनका कभी भी विरोध किये बिना ही, सही किया था। मुझे ऐसा पता चला था कि अपनी परीक्षाओं में उसने किसी भी समय एक भी सवाल नहीं पूछा बल्कि अपने विद्यार्थियों को उनकी अपनी मर्जी से, किसी भी प्रकरण पर स्वच्छंद विचार प्रस्तुत करने के अवसर दिये थे। पुराने प्रोटेस्टेंट होने के नाते; बोस्टन-निवासी विनथ्राप को दक्षिण के रिवाज़ों और पूर्वग्रहों से अभ्यस्त होने में मुश्किल पड़ी थी। उसे बर्फ़ की याद सताती, गोकि मैंने यह देखा है कि उत्तरवासी ठंड के ठीक वैसे ही आदि हैं जैसे हम, अर्जेंटीनिया-वासी, गर्मी जज्ब कर सकते हैं। कुछ-कुछ लम्बे-से, भूरे बाल वाले, दमदार तो कत्तई नहीं बल्कि कुछ कम ही फुर्तीले उस आदमी की छवि मेरे मन में आज भी बसी है, गोकि अब धुंधला गयी है। उसकी बनिस्बत उसके सहयोगी हरबर्ट लॉके की स्मृति मेरे दिमाग में स्पष्ट है, जिसने मुझे अपनी पुस्तक "पुरानी नोर्स और पुरानी अंग्रेज़ी में वाग्जालिक उक्तियों के इतिहास की पड़ताल" की एक प्रति मुझे दी थी जिसमें लिखा हुआ है कि एंग्लो-सेक्सन को उन कुछ ज्यादा ही याँत्रिक रूपकों (समुद्र के लिए 'व्हेल की सड़क', 'ईगल' के लिए 'युद्ध का बाज') से मोह त्यागने में लम्बा समय नहीं लगा, जबकि प्राचीन स्कैंडेनेवियन-चारण ने जटिलता की हद तक उन्हें घोला-घाला। हरबर्ट लॉके का ज़िक्र मैंने इसीलिए किया है क्योंकि वह इस कहानी का अटूट अंग है।

अब मैं उस आइसलैंड-निवासी एरिक ऐनार्स्सन की बात बताता हूं जो कि शायद मुख्य पात्र है। रूबरू मेरी उससे कभी भी भेंट नहीं हुई। वह 1969 में टेकसास आया था, और

तब मैं कैम्ब्रिज में था; हम दोनों के उभयनिष्ट मित्र, रेमान मार्टिनेज लोपेज के खतों के जरिये मुझमें ऐसा भाव बना कि जैसे मैं ऐनार्स्सन को घना जानता हूँ। मैं कह सकता हूं कि वह उतावला, उग्र, और संकोची था, लम्बे लोगों के देश का ऊंचा निवासी था। उसके सिर पर लाल बाल थे, इसी कारण उसके छात्रों ने उसका नाम एरिक द रेड रख दिया था। उसकी राय में किसी परदेसी के द्वार स्लैंग का उपयोग जबरन थोपा हुआ और भ्रांतिपूर्ण होता है कि जिससे वह घुसपेठिया नजर आता है, इसीलिए उसने यदा-कदा भी 'ओके' कहने का सौजन्य नहीं दिखाया। नोर्डिक-भाषाओं, अंग्रेजी, लेटिन, और—चाहे वह इन्कार करे—जर्मन के इस प्रकांड पंडित को अमेरिकी विश्वविद्यालयों में कदम रखते हुए जरा भी मुश्किल नहीं हुई थी।

क्यूब्रियन बोली के डेनिश स्रोतों पर डीक्विसी द्वारा लिखे हुए चार लेखों की विवेचना का प्रकाशन ऐनार्स्सन का पहला महत्त्वपूर्ण काम था। उसके बाद उसने यार्कशायर की ग्रामीण बोलियों में से किसी एक बोली पर अपना अध्ययन प्रकाशित किया था। दोनों ही प्रकाशनों को खूब सराहा गया था। लेकिन ऐनार्स्सन को लगा था कि उसके कैरियर को तेज उभार मिलना चाहिये। येल युनिवर्सिटी प्रैस ने, 1970 में, 'बेटल ऑफ मेल्डान' का उसके द्वारा तैयार किया गया एक लम्बा आलोचनात्मक संस्करण प्रकाशित किया था। ऐनार्स्सन द्वारा लिखी गयी टिप्पणियों की विद्वता असंदिग्ध थी; हालाँकि भूमिका में उल्लेखित उसकी कतिपय परिकल्पनाओं के कारण अकादमियों के अत्यंत गुप्तदायरों में विवाद भड़का था। उदाहरणार्थ, उसने लिखा था, कि इस काव्य की शैली—चाहे धुंधले रूप में ही—ब्योवुल्फ के जानबूझकर गढ़े गये रेहटरिक के सादृश्य नहीं है, बल्कि वीरगाथाकाव्य के फिन्सबर-भाग से मिलती-जुलती है, और कि उसमें भावभरे विशद विवरणों को संजोने में वे विधियाँ पीछे छिप गयी हैं कि जिनकी हम, आइसलैंड की वीरगाथाओं में सराहना करते हैं; और वास्तव में वे इस योग्य हैं भी। उसने एल्फिस्टन के मूलपाठ के भी अनेक मजमूनों का संशोधन किया था। प्रोफेसर के पद पर ऐनार्स्सन की पदोन्नति उसके सेवाकाल के प्रथम वर्ष में ही कर दी गयी थी।

सभी जानते हैं कि अमेरिकन विश्वविद्यालयों में आयोजित होने वाली बौद्धिक सभाएँ अत्यंत प्रतिष्ठित मानी जाती हैं। एक अवसर पर, गत वर्ष, मिशिगन स्टेट में आयोजित जर्मनिक की एक महत्त्वपूर्ण संगोष्ठी में उसने एक पर्चा पढ़ा था। उसके विभागाध्यक्ष ने कि जो छुट्टियाँ मनाने कहीं बाहर जा रहा था, विनथ्राप से पूछा कि विसकान्सिन में आयोजित आगामी सभा में पर्चा प्रस्तुत करने के लिए किसे चुना जाये। दो ही प्रत्याशी उपयुक्त थे—हरबर्ट लॉके और एरिक ऐनार्स्सन।

विनथ्राप ने, कार्लाइल की भाँति, अपने पुरखों की मॉफिक प्युरिटन धर्म तो त्याग दिया था, लेकिन उसके नीतिशास्त्र को अपना रखा था। उसका कर्त्तव्य स्पष्ट था, और उसने अपनी राय जाहिर करने में आनाकानी नहीं की। हरबर्ट लॉके, 1954 से, बड़ी मेहनत के साथ उसका सहयोग करने में जुटा रहा है, खासकर ब्योवुल्फ के उस विशिष्ट टिप्पणी-युक्त संस्करण को तैयार करने में, कि जो अनेक विश्वविद्यालयों में, क्लैवर के संस्करण को प्रतिस्थापित कर कायम हुआ था। लॉके, इन दिनों, जर्मेनिक-विशेषज्ञ के लिए अत्यंत उपयोगी अंग्रेजी एंग्लो-सेक्शन कोश के संकलन में लगा हुआ है ताकि पाठकों को व्युत्पत्तिविषयक शब्दकोशों में आँख गड़ाने की प्रायः निरर्थक मशक्कत न करना पड़े। ये आइसलैंड निवासी बड़ी उम्र का भी नहीं है; गोकि उसकी गुस्ताखी के कारण हर कोई, स्वयं विनथ्राप भी, उससे खफा हैं। और, ऐनार्स्सन 'मेल्डान' के

अपने आलोचनात्मक संस्करण के प्रकाशन के कारण खूब प्रसिद्ध है। वह विवाद का उस्ताद है। उस शर्मीले मौनस्वभावी लॉके की तुलना में संगोष्ठी के मंच पर एनार्स्सन ही ज्यादा जमेगा।

विनथ्राप इन्हीं सोच-विचारों में डूबा हुआ था कि तभी 'येल फिलालॉजिकल क्वार्टरली' के समीक्षा-कालम में इंग्लो-सेक्शन भाषा के शिक्षण के विषय में एक बृहत् निबन्ध प्रकाशित हुआ। लेख के अंत में ई० ई० नाम अंकित था, और संदेह से बचने के लिए उसके नीचे 'टेक्सास विश्वविद्यालल' छपा हुआ था। किसी विदेशी की शुद्ध अंग्रेजी में लिखा हुआ, वह लेख, अपनी अभद्रता को जरा भी छिपाये बिना, एक खास तरह का हिंसक रूप अख्तियार किये हुए था। उसमें यह तर्क प्रस्तुत था कि ब्योवुल्फ की कृति—जोकि वह आरंभिक कृति है मगर छद्म-विर्जिलिअन' रेहटरिकल शैली में है—के अध्ययन के जरिये एंग्लो-सेक्शन की पढ़ाई शुरु करना ठीक उसी तरह का स्वेच्छाचार है जैसा कि अंग्रेजी का अध्ययन मिल्टन के विशद काव्य को पढ़ने के साथ शुरु करना है। उसने क्रमक्रमानुसार अध्ययन को उलटने का सुझाव दिया कि पढ़ाई तो ग्यारहवीं सदी की कविता 'द ग्रेव'—जिसमें प्रचलित भाषा का प्रयोग है—से आरंभ की जानी चाहिए, और फिर मूल तक पीछे जाना चाहिये। जहाँ तक ब्योवुल्फ का प्रश्न है, तीन हज़ार पंक्तियों के इस भारी-भरकम उबाऊ काव्य के कुछ अंश—जैसे, समुद्र से पैदा हुए और समुद्र में ही दफ़न गये स्काइल्ड के दाह संस्कार—की पढ़ाई पर्याप्त है। गोकि लेख में विनथ्राप के नाम का उल्लेख नहीं था, फिर भी उसे बड़ा आघात लगा। वह, बहरहाल, उसके लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना यह तथ्य कि उसकी शिक्षण-पद्धति पर संदेह व्यक्त किया गया।

चंद दिन ही बचे थे। अपनी निष्पक्षता बरकरार रखने के लिए, विनथ्राप ने, ऐनार्स्सन के उस विवादास्पद लेख के कारण, अपने निर्णय को प्रभावित नहीं होने दिया। लॉके और इस आइसलेंडर के बीच चुनाव करने में उसे कोई अड़चन नहीं हुई। विनथ्राप ने, विभाग के अध्यक्ष, ली रोजेनथाल के साथ, एक सुबह चर्चा की; और उसी दोपहर, विसकान्सिन की सभा में भेजे जाने के लिए, ऐनार्स्सन के नाम की अधिकृत घोषणा कर दी गयी।

रवाना होने के एक रोज पहले, ऐनार्स्सन एज़रा विनथ्राप के आफिस में गया, धन्यवाद देने और बिदा लेने के लिए। एक खिड़की झाड़ों की कतार से बंधी गली के सम्मुख खुलती थी, भीतर दो आदमी पुस्तकों से भरी शेल्फों से घिरे थे। ऐनार्स्सन की तेज नजरों ने, चमड़े की जिल्द में बँधी हुई 'एड्डा इस्लेंडोरम' के प्रथम संस्करण को एकदम चीन्ह लिया। विनथ्राप ने कहा धन्यवाद की क्या बात है, उसे पूरा भरोसा है कि ऐनार्स्सन बढ़िया प्रदर्शन करेगा। उनका वार्तालाप, जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, लम्बा चला था।

"यह बिलकुल सच है," ऐनार्स्सन ने कहा था, "और हर कोई जानता है, कि रोजेनथाल ने विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करने का गौरव मुझे आपकी राय पर ही प्रदान किया है। मैं जर्मेनिक का अच्छा स्कालर हूँ, मैं पूरी कोशिश करूंगा कि उसे मुझे भेजने का कत्तई अफसोस न हो। मेरे बचपन की जुबान आइसलेंड-की-प्राच्यकथाओं की जुबान है, और मेरा एंग्लो-सेक्शन भाषा का उच्चारण अपने ब्रिटिश सहयोगियों की बनिस्बत ज्यादा अच्छा है। मेरे विद्यार्थी "कैंनिग" बोलते हैं "कनिंग" नहीं। उन्हें खूब मालूम है कि मेरी क्लास में सिगरेट पीना बिल्कुल मना है और यह भी कि वे हिप्पियों की तरह उछलकूद कत्तई नहीं कर सकते हैं। जहाँ तक मेरे नाकामयाब प्रतिद्वंद्वी का सवाल है यह बड़ी ओछी बात होगी कि मैं उसकी आलो-

चैना करूँ। 'वाग्जालिक उक्तियों' पर उसकी पुस्तक में उसने न सिर्फ मूल स्रोतों में ही बल्कि मैस्सनर और मार्खार्दत की यथायोग्य कृतियों में भी अपनी खोज प्रदर्शित कर दी है। खैर, इस निरर्थक बात में समय क्यों गँगाया जाये मुझे तो आपसे एक व्यक्तिगत क्षमायाचना करनी है।

ऐनार्स्सन रूका, उसने खिड़की के पार झाँका, और अपना वक्तव्य पुनः जारी किया; "मैंने अपना वतन 1964 के आखीर में छोड़ा था" वह बोला। "जब आपने दूर देश में आप्रवास का निश्चय कर लिया हो तब आप उस धरती पर जैसे-तैसे धकाना, स्वयं पर, घातक रूप से थोप लेते हो। मेरे पहले दो छोटे-छोटे काम, कि जो ठेठ भाषाशास्त्रीय प्रकृति के थे, उनका उद्देश्य मेरी योग्यता प्रदर्शित करने के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था। वह, जाहिर है, कि पर्याप्त नहीं था। मेरी दिलचस्पी हमेशा 'बेटल ऑफ मेल्डान' में रही है जो मुझे इस कदर कंठस्थ है कि शायद ही एकाधी भूल करूँ। मैंने 'येल' से उसके आलोचनात्मक संस्करण का प्रकाशन करवाया। कविता में स्केंडेनेवियाई-विजय की स्थापना है, जैसा कि आप जानते हैं, लेकिन यह अवधारणा, कि उसने बाद की आइसलेंड-प्राच्यकथाओं पर प्रभाव डाला, मेरे खयाल से, अमान्य और ऊलजलूल है। उसका संकेत मैंने सिर्फ अंग्रेजी-भाषी पाठकों को फुसलाने के लिए ही किया था।"

आइसलेंडर ने विनथ्राप को सकते में ला दिया था। "अब मैं मुद्दे की बात, याने 'येल क्वार्टरली' में प्रकाशित मेरे विवादास्पद लेख के विषय में आपको बताता हूँ। यद्यपि वह जानबूझकर आपकी खामियों को अतिरंजित करता है, लेकिन वह मेरी उस कार्यप्रणाली को न्यायोचित ठहराने का प्रयास करता है, जो किसी उलझी हुई कथा को बयान करते जटिल काव्य की तीन हजार क्रमबद्ध पंक्तियों की ऊब को विद्यार्थी पर थोपने के बदले उसे एक बड़ी शब्दावली प्रदान करती है, और फिर ऐसा करते हुए उसे—कि यदि तब तक उसने उन्हें पढ़ने का इरादा ही त्याग न दिया हो—एंग्लो-सेक्शन साहित्य के सारे ग्रंथों का आनंद लेने की गुंजाइश भी देती है। विसकान्सिन के सम्मेलन में शामिल होना मेरा प्रमुख उद्देश्य था। हम दोनों, मेरे प्यारे दोस्त, भलीभाँति जानते हैं कि ये सभाएँ हास्यास्पद होती हैं और कि वे फिजूलखर्च का बोझ बढ़ाती हैं हालाँकि वे किसी के कैरियर के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।"

विनथ्राप ने अचरज के साथ उसकी ओर देखा। न्यू इग्लेंडर सयाना आदमी था, अलबत्ता उसकी प्रवृत्ति ऐसी थी कि वह सभी बातों—चाहे वे सम्मेलन संबंधी हों या दुनियादारी की हों और चाहे वे बिलकुल ही हास्यास्पद क्यों न हों—पर ध्यान देता था।

"आपको अपनी पहली मुलाकात की याद होगी," ऐनार्स्सन बोलता गया। "मैं न्यूयार्क से आया था। वह रविवार का दिन था। विश्वविद्यालय का डार्निंग हाल बंद था, सो हमने 'नाइटहाक' में खाना खाया। उस मुलाकात से मैंने बहुत कुछ सीखा। मेरी हमेशा-से मान्यता थी कि अमरीकी गृहयुद्ध गुलामप्रथा के पक्षधरों के विरूद्ध धर्मयुद्ध था; जबकि आपने अपने तर्क में कहा था कि 'दक्षिण' का, संघ से अलग होने की और अपनी स्वयं की संस्थाओं को बहाल रहने देने की इच्छा रखना, उसके अधिकारों की सीमा में ही था। अपनी बात पर ज्यादा जोर डालने के उद्देश्य से आपने मुझे बताया था कि आप उत्तरवासी हैं और कि आपके किसी पूर्वज ने हेनरी हेलेक की फौज का सिपाही बनकर युद्ध लड़ा था। आपने दक्षिणी-संघ राज्यों के साहस की प्रशंसा भी की थी। मुझमें तत्क्षण मूल्यांकन करने का अनोखा विवेक है। वह सुबह मेरे लिए पर्याप्त थी। मैं समझ गया, प्यारे विनथ्राप, कि आप निष्पक्षता के लिए विलक्षण अमेरिकी भावावेश के वशीभूत हैं। आप, सर्वोपरि, ईमानदार बने रहना चाहते हैं। खासकर इसलिए

क्योंकि आप उत्तरवासी हैं, आप दक्षिणवासियों के दावे को समझने और उसे न्यायोचित मानने का प्रयास करते हैं। जैसे ही मुझे पता चला कि विसकान्सिन भेजने के लिए विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि का चुनाव रोजेनथाल को दी गयी आपकी सिफारिश पर निर्भर करेगा, वैसे ही मैंने अपने लेख को 'क्वार्टरली' में प्रकाशित करने का आग्रह किया, यह मान कर कि आपकी शिक्षण-विधि की आलोचना करने का मतलब आपका मत अपने पक्ष में कर लेना है।"

देर तक मौन बना रहा। सबसे पहले विनथ्राप ने उसे तोड़ा। "मैं हरबर्ट का पुराना दोस्त हूं, और उसके काम का प्रशंसक हूं," वह बोला। "सीधे से परोक्ष में, तुमने मुझ पर हमला किया है। अपना मत तुम्हारे पक्ष में न देना किसी-न-किसी तरह की प्रतिहिंसा होती। मैंने उसकी और तुम्हारी योग्यताओं को तौला, और नतीजा सामने है।" फिर उसने बात को ऐसे आगे बढ़ाया जैसे वह प्रकटतः सोच रहा हो, "कदाचित् मैं बदला न लेने के अपने मिथ्या अभिमान के आगे झुक गया हूंगा। ऐसा लगता है, तुम्हारा दांवपेंच चल गया।"

"हां, मेरा दांवपेंच चल गया," ऐनार्स्सन ने जवाब दिया, "यद्यपि जो कुछ मैंने किया उसका मुझे अफसोस नहीं है। मैं अपने विभाग के सर्वाधिक हित में हमेशा हर काम करूँगा। जो भी हो, मैं विसकान्सिन जाने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुका था।"

"हूं; अव्वल दर्जे के वाइकिंग—समुद्री डाकू!" विनथ्राप ने कहा; उसने सीधी, ऐनार्स्सन की आंखों में, अपनी नज़रें गड़ा रखीं थीं।

"यह भी अच्छा रोमान्टिक वहम है। स्कैंडेनेवियन का अर्थ सिर्फ वाईकिंग—समुद्री डाकू—का वंशज माना जाना ही पर्याप्त नहीं है। मेरे पुरखे इवान्जेलिकल चर्च के भले पादरी थे; दसवीं सदी के आरम्भ में, मेरे पूर्वज थोर पूजागृह के बढ़िया पुजारी भी रहे होंगे। और, जहां तक मेरी जानकारी है, मेरे परिवार में कभी भी, कोई समुद्रयात्री नहीं था।"

"मेरे परिवार में तो अनेक थे," विनथ्राप बोला। "बहरहाल, हम बहुत भिन्न नहीं हैं। एक ऐसा पाप है जो हम दोनों के बीच समान है, और वो है मिथ्या अहंकार। तुम जो अभी मुझसे मिलने आये हो तो अपने चालाक दांवपेंच का झूठा घमंड दर्शाने के लिए; और मैंने तुम्हारा समर्थन जो किया तो इस आत्मप्रदर्शन के लिए कि देखो मैं कितना न्यायशील आदमी हूं।"

"और भी एक चीज़ हम दोनों में समान है," ऐनार्स्सन ने कहा। "वह है राष्ट्रीयता। मैं एक अमेरिकी नागरिक हूं। मेरी नियति यहीं बंधी है, अल्टिमा थूले में नहीं। तुम तो कहोगे कि पासपोर्ट से किसी आदमी का स्वभाव नहीं बदलता।"

फिर, हाथ मिलाते हुए, दोनों ने एक-दूसरे से विदा ली।

नयनहीन

□ **जार्ज लुई बोर्खेज़**

न-मालूम कौन देखता पलट कर
निहारता जब कभी आइने में अपनी सूरत;
न-मालूम कौन वह शक्ल बूढ़ी खोजती अपना अक्स
चुप-से और पहले-से ही उदासीन गुस्से में।
अपने अंधत्व में धीमे-धीमे, हाथ से महसूस करता अपने
चेहरे की नाक-नक्श। उजाले की कोई चमक
दौड़ जाती मेरे भीतर। मैंने काढ़ दिये तुम्हारे बाल,
धूसर रंग के और साथ-ही-साथ, सुनहरे।
फिर कहता हूं खोया नहीं मैंने ज़्यादा कुछ
चीज़ों की बेमानी खाल के सिवा।
ये सयानी बातें मिलती हैं **मिल्टन** से, और वे बातें महान हैं,
लेकिन तब सोचता हूं चिट्ठियों का और गुलाबों का।
सोचता हूं यह भी, यदि देख पाता अपना रूप,
जान पाता, इस दोपहर, कौन हूं मैं।

अनुवाद : इंदुप्रकाश कानूनगो

हिमाचल का हिन्दी नाटक

□ डॉ० ओम्प्रकाश सारस्वत

साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक का वितान जटिल है। नाट्याभिकल्पन का अपना एक व्याकरण है जिसे हृदयंगम किये बिना नाट्यरचना कारगर नहीं हो सकती। नाटक यूं भी कविता, कहानी, उपन्यासादि की तुलना में विषय वस्तु की दृष्टि से निश्चयत: समसामयिक, भाषा की दृष्टि से व्यावहारिक, कल्पना की दृष्टि से बहुआयामी तथा प्रस्तुति की दृष्टि से अभिनयधर्मी, रंगधर्मी होता है।

नाटक के व्यक्तित्व की विराटता को समक्ष रखते हुए ही इसे 'पंचमवेद' कहा गया है।[1] दैत्यों की आशंका पर नाटक की बहूद्देश्यता को परिभाषित करते हुए नाटक के आदि प्रणेता नाट्याचार्य ब्रह्मा ने विघ्नकर्त्ताओं से कहा कि "हे दैत्यो ! इस नाट्यवेद में केवल आपके या देवताओं के ही चरित्रों का अनुभावन नहीं है अपितु इसमें तीनों लोकों के भावों का प्रस्तुतिकरण है। इसमें कहीं धर्म, कहीं क्रीड़ा, कहीं अर्थ, कहीं काम, कहीं हास्य, कहीं युद्ध तथा कहीं वध का अनुकरण है। धर्मपरायणों के लिए इसमें धर्म, कामियों के लिए काम, दुर्विनीतों के लिए निग्रह तथा प्रमत्तों के लिए दमन की क्रियाओं का वर्णन है। यह नपुंसकों में ढीठता तथा शूरवीरों में उत्साह का जनक है। यह अबोध बालकों को विशेष ज्ञान देने वाला तथा विद्वानों के ज्ञान का विस्तार करने वाला है। यह ऐश्वर्यशाली प्रभुओं को विलास, दु:खार्त्तों को चित्त की स्थिरता, अर्थार्थियों को अर्थ तथा विकलचित्तों को धैर्य देने वाला है। अनेक प्रकार के भावों से युक्त तथा मन और आयु की अनेक अवस्थाओं को द्योतित करने वाला, लोक के व्यवहार का अनुकरण करने वाला यह नाटक का साहित्यरूप मैंने रचा है।

इतना ही नहीं भविष्य में यह नाट्य उत्तम, मध्यम तथा अधम मनुष्यों के कार्यों का द्योतक, हितावह उपदेशों का वक्ता होगा। और यही अनेक प्रकार के (शृंगार, हास्य, करुण, वीरादि) रसों, (संधि, शान्ति, शबलता आदि) भावों, तथा भावादियों के द्वारा अनेक प्रकार की क्रियाओं की शिक्षा देने वाला होगा। दु:खितों के दु:ख, श्रमार्त्तों के श्रम, शोकार्तों के शोक तथा संतप्तों के संताप को हरने वाला, धर्म, यश, आयु, हित तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला एवं सब लोगों को उपदेश देने वाला नाटक होगा। दुनिया का ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या तथा कला नहीं जो इसमें न मिले। चूंकि सभी प्रकार के शास्त्रों, शिल्पों और कार्यों का समाहर्त्ता है यह नाटक, इसलिए मैंने इसकी रचना की। अत: हे दैत्यो ! आपको आशंका नहीं करनी चाहिए

1. नाट्यं हि नाम पंचमो वेद:।

क्योंकि 'इस वेद' में सातों द्वीपों[1] अर्थात् समस्त संसार के भावों का वर्णन है (जिसमें आपका द्वीप भी सम्मिलित है)। तुम इसे देवों, असुरों, राजाओं, गृहस्थजनों तथा ब्रह्मर्षियों के वृत्तान्त को दर्शाने वाला मानो। सुख और दुःख में समन्वित जो भी लोक का स्वभाव है वही आंगिक-आदि अभिनय से युक्त होकर इस नाटक में रहता है। यह संसार में वेद-विद्याओं और इतिहास की गाथाओं की नाट्यरूप में परिकल्पना करने वाला लोगों के मनोरंजन का कर्त्ता होगा तथा यही नाट्य श्रुति-स्मृति, सदाचार तथा और भी जो अवशिष्ट अर्थ एवं व्यवहार हैं उनकी अभि-कल्पना करने वाला लोकरंजनकारी होगा।[2]

नाटक का कोई भी परीक्षक इसमें नाटक की विशद गुणात्मा का दर्शन कर सकता है। नाटक के बाह्यांगों की अपेक्षा नाटक की आन्तरिक गुण सत्ता का विधान इसमें बड़ी प्रवीणता और सहजता के साथ किया गया है। नाटक की इसी व्यापक सोद्देश्यता एवं प्रभविष्णुता को लक्षित कर संभवतः कालिदास ने भी इसीलिए कहा है कि—

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाव्यतिकरे स्वांगं विभक्तं द्विधा।
त्र्योगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्॥[3]

अर्थात् मुनिजनों का भी कहना है कि यह नाटक तो देवताओं की आंखों को भी सुहावना लगने वाला शान्त यज्ञ है। स्वयं महादेव ने ही उमा से विवाह करके अपने शरीर में इसके दो भाग कर दिए हैं; एक तांडव और दूसरा लास्य। इसमें सत्व, रज और तम ये तीनों गुण, नाना प्रकार के रस (ये रस नाट्यशास्त्र में गिनाए गए रसों की संख्या और स्वरूप का भी अतिक्रमण कर सकते हैं, क्योंकि रसों, भावों की संख्या चित्तवृत्तियों की अनन्तता की अनुकृति के कारण नाना-विध हो सकती है) तथा लोक के विविध-विचित्र चरित्र का अंकन रहता है अतः भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों के लिए प्रायः नाटक ही एक ऐसा उत्सव है जिसमें सभी एक-सा रस आनन्द लेते हैं।

रुचि भेद वाले इस लोक साहित्य को मात्र दृश्य-श्रव्य विधा यह नाटक ही, एक साथ संतोष दे सकता है। क्योंकि नाटक में, कथा, कविता, भाषा भंगिमा, नाना रस निष्पत्ति, नाना भावानुभूति तथा अभिनय विविधता सभी दृश्य में परिणत होकर दर्शक समाज को आनन्दित करने में कृतकार्य होते हैं।

हिमाचल का हिन्दी-नाटक

कविता, कहानी, उपन्यासादि की तरह हिमाचल का हिन्दी नाटक भी सातवें दशक की ही उपज है। नाटक के क्षेत्र में भी यहां सन् साठ के बाद ही नाटककारों का ध्यान आकर्षित हुआ। वैसे हिमाचल में, भगत, बांठड़ा, करयाला जैसे अनेक लोकनाट्य परम्परा से प्रचलित रहे हैं,

1. पाठकों की जानकारी के लिए पुराणों में वर्णित सात द्वीप ये हैं।
(1) जम्बू (2) प्लक्ष (3) शाल्मलि (4) कुश (5) क्रौंच (6) शाक तथा (7) पुष्कर। प्राचीन भूगोल के अनुसार सारा भूमंडल इन सात द्वीपों (खंडों) में विभक्त था।
2. नाट्यशास्त्र—प्रथम अध्याय श्लोक संख्या 105 से 123।
3. मालविकाग्निमित्रम्—प्रथमांक, श्लोक संख्या 4।

किन्तु साहित्यिक नाटकों की ओर यहां लेखकों का ध्यान क्यों नहीं गया इस पर निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता। वैसे हिमाचल की वर्फीली जलवायु, अन्य राज्यों से सम्पर्क का अभाव, व्यवस्थित रंगमंच की कमी तथा राज्यप्रोत्साहन आदि की कमी जैसे कुछ प्रत्यक्ष कारण गिनाए जा सकते हैं, जो रंगकर्म के विकास में बाधक रहे होंगे। नाट्यनिर्माण में समाज और प्रबुद्ध लोगों की भागीदारी आवश्यक है क्योंकि नाटक समूह का दर्शन है।

हिमाचल का अब तक रचित नाट्यसाहित्य, साहित्य की इतर विधाओं की तुलना में निराश नहीं करता। कविता, कहानी के समकक्ष नाटक अल्प ही विनिर्मित होता है। सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य के सन्दर्भ में जैसी नाटक की स्थिति है कुछ वैसी स्थिति हिमाचल के नाटक के सम्बन्ध में भी है। यूं भी मात्रा का गुणवत्ता से कोई कार्य-कारण का नाता नहीं होता।

नाटकों का प्रवृत्तिगत-अनुशीलन

सभ्यता के विकास के साथ-साथ समाज की जटिलताएं बढ़ती हैं। समाज के उन्नतिशील होने पर पुरानी बाधाओं और नई समस्याओं का उपस्थित होना भी स्वाभाविक है। परिणाम-स्वरूप साहित्य को इन उभयविध संकटों से मुक्ति पाने का प्रयास करना पड़ता है। साहित्य परम्परा को नकारता-स्वीकारता हुआ वर्तमान से सामंजस्य बिठाता है। जो साहित्य अपने समय की धड़कनों को अनसुना करके केवल 'अपनी ही हांकता' है वह कभी भी चर्चा के वृत्त में नहीं आता। इस दृष्टि से नाटक साहित्य के सबसे अधिक जीवन्त दस्तावेज होते हैं।

हिमाचल का हिन्दी नाटक चूंकि स्वतंत्रता के लगभग दो दशकों के बाद ही प्रकाश में आया है अतः स्वतंत्रता के कुछ इधर-उधर के वर्षों की परिस्थितियां ही यहां के नाट्यसृजन में कारणभूमियां बनी हैं। स्वतंत्रता से पूर्व के वर्षों में हिमाचल छोटे-छोटे अनेक राज्यों में विभक्त था। स्वतंत्रता आंदोलन की लहर एवं कुछ नवचिंतकों-सुधारकों, जिनमें स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द तथा महात्मा गांधी प्रमुख थे, इन लोगों के स्वराष्ट्र एवं स्वभाषा के प्रति स्वाभिमान तथा छूआ-छूत, बहुविवाह, बालविवाह के प्रति विरोध प्रकट करने की भावना ने यहां के साहित्यसर्जकों को प्रेरित किया। हिमाचल की आर्थिक दशा भी जीवनयापन के साधनों तक ही सीमित थी, अतः इस स्थिति के द्योतक नाटक भी यहां रचे गए।

स्वतंत्रता के पश्चात्, खासकर सन् साठ के बाद रचे गए नाटकों में देश में भारत-चीन (1961) और भारत-पाकिस्तान (1965 और 1971 के दोनों) युद्धों के परिणामस्वरूप उपजी देशभक्ति तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एकता के दर्शन होते हैं। युद्ध की विभी-षिका तथा इसके कुपरिणामों ने भी यहां के नाटककारों को आन्दोलित किया। इसी प्रकार देश में, स्वातंत्र्योत्तर प्रचारित की गई भावात्मक एकता की भावना ने नाटककारों को प्रेरणा दी। कुल मिलाकर इन्हीं उल्लिखित परिस्थितियों तथा समय-समय पर सामने आती सामाजिक समस्याओं को दृष्टि में रखकर भी यहां के नाटककारों ने नाटक लिखे।

सामाजिक सरोकारों से अनुगत नाटक

समाज की चिन्ता किये बिना रचा जाने वाला साहित्य वाग्जाल होता है। एक प्रबुद्ध लेखक को समाज से सरोकार रहता है। किसी भी देश का साहित्य जो अपने काल की धड़कनों को लिखता हुआ चला है 'काल' से बड़ा हो गया है। हमारे वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि इसके प्रमाण हैं।

इतिहास होते प्रकाशनक्रम में मेरे पास सबसे पहला नाटक-संग्रह 'बलिदान'[1] है। नरेन्द्र अरुण के 'बलिदान' में तीन लघु नाटक संकलित हैं—(1) लद्दाख की ओर (2) खोज तथा (3)जागीरदार। 'लद्दाख की ओर' नाटक की कथा भारत-चीन युद्ध से प्रेरित देश-प्रेम की भावना से युक्त है। विधवा गंगा का पुत्र शेखर, देश-भक्ति की भावना से अनुगत होकर सेना में भर्ती होकर लद्दाख क्षेत्र में शत्रु से लड़ने चला जाता है। युद्ध के मोर्चे पर लड़ते-लड़ते पहले उसके मृत घोषित होने की खबर, फिर उसके लौटने तथा उसकी मां के ट्रक तले कुचले जाने और गीता (प्रेमिका) से उसके मेल को इसमें चित्रित किया गया है। इस नाटक के सम्बन्ध में डा० फुल्ल का कहना है कि "एकांकी के आरम्भ में ही शेखर एवं गीता का सम्वाद, शेखर की चुहुल तथा गीता का उपदेश······इनमें तालमेल नहीं बैठता"[2] वैसे इसमें पात्रों का अचानक हृदय परिवर्तन उनके स्वाभाविक विकास को नाटकीय बना देता है।

नरेन्द्र अरुण के दूसरे लघु नाटक 'खोज' की कथावस्तु राधाबाई वेश्या के इर्द-गिर्द बुनी गई है। आत्महत्या के इरादे से डूब मरने की इच्छा लिए राधाबाई को, सेठ रामदास बचा लेता है और उससे शादी भी कर लेता है। उनके एक पुत्र प्रकाश भी हो जाता है। एक बार राधाबाई के कमरे में एक गुंडे बांकेलाल द्वारा राधावाई को ब्लैक मेल करने की घटना को, सेठ सुन लेता है और राधाबाई को घर से निकाल देता है। कई दिनों पश्चात् इंग्लैंड से लौटा प्रकाश जिस एक पगली औरत को बच्चों के प्रकोप से बचाता है वह उसकी मां (राधाबाई) निकलती है। परन्तु राधाबाई अन्ततः इस लोक को त्यागने से पहले बांकेलाल से मिलती है—यह उसका भाई निकलता है। नाटक की वस्तु संयोजना फिल्मी-स्टाइल की हो गई है। घटनाओं का विकास भी अस्वाभाविक लगता है।

नरेन्द्र का तीसरा नाटक 'जहांगीर' जागीरदारी प्रथा के विरोध में लिखा गया, कृषक श्रमिकों से सहानुभूति दर्शाने वाला, मदिरा के खिलाफ बोलने वाला, डाकुओं के आतंक को चित्रित करने वाला तथा किसानों के हितों की वकालत करने वाला अनेक सामाजिक सरोकारों को लाठी देने वाला नाटक है। नाटक की भावना यद्यपि विश्वसनीय है परन्तु नाटक में पात्रों का चरित्र विश्वसनीयता से परे लगता है। यहां भी पात्रों के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास नहीं हुआ है। पात्र, लेखक की इच्छानुसार अवसर के विपरीत भी अपना रूप गढ़ लेते हैं।

इधर नरेन्द्र अरुण के दो और नाटक संग्रह सामने आए हैं—'खेल-खेल में'[3] तथा 'इतिहास वृक्ष'[4]। खेल-खेल में' नाटक संग्रह में 'दहेज का भूत' 'बसोआ' 'मोहणा' तथा 'खेल-खेल में' ये चार लघु नाटक संग्रथित हैं। 'दहेज का भूत' दहेज की कुप्रथा के विरुद्ध जनमत जागरण का आह्वान करता है। 'दहेज' एक सामाजिक बुराई ही नहीं अपितु एक सामाजिक अपराध भी है। इस लघु नाटक के कथातन्तु बाबू बिहारी की दो बेटियों माधुरी (विवाहिता) तथा मंजु अविवाहिता के इर्द-गिर्द वितन्वित है। इस नाटक में दीपाली नामक पात्र के माध्यभ से दहेज के प्रति लालच तथा नरेश और मंजु पात्रों के द्वारा दहेज का निषेध दिखाया है। नाटक सामयिक समस्या से अनुप्राणित है।

---

1. बलिदान (1965), नरेन्द्र अरुण; प्रकाशक—कुमार सन्ज सोलन (हि० प्र०)।
2. हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० 76।
3. खेल-खेल में : (1985) प्रकाशक—ग्रन्थ अकादमी, पुराना दरियागंज, नई दिल्ली-2।
4. इतिहासवृक्ष : (1985) भावना प्रकाशन, नई दिल्ली-110092।

'खेल-खेल में' शीर्षक नाटक, एक प्रयोगधर्मी नाटक है जिसमें कुर्सी की होड़ को मुख्य कथ्य बनाया गया है। नाटक में दर्शाया गया है कि हमारे वृद्ध राष्ट्रनायक कुर्सी को किसी भी मूल्य पर नहीं छोड़ते हैं। अंधों का जनमत, नारों के बीज और भाषणों की फसलें, यही इस नाटक के घटना तत्त्व हैं। नाटक आज की राजनीति में कुर्सीतंत्र पर अच्छा व्यंग्य करता है। 'वसोआ' और 'मोहणा' दो लोकसंस्कृति के कथासूत्रों पर आधारित हैं अतः इनका विवेचन यथा-स्थान किया जाएगा।

नरेन्द्र अरुण का ही एक और नाटक संग्रह है 'इतिहासवृक्ष'। 'इतिहास वृक्ष' में 'एक थी बेटी', 'समस्याओं के रक्त बीज', 'कुर्सीतंत्र', 'सीमा की ओर', 'जय बांगला' तथा 'वापसी' ये छोटे नाटक संगृहीत हैं। 'एक थी बेटी' लघु नाटक 'भारत की महान् बेटी' श्रीमती इंदिरा गांधी के जीवन वृत पर आधृत नाटक है। नाटककार ने उसे गरीबों की मसीहा, युवा वर्ग की आशाओं का प्रतीक तथा राष्ट्र की महान् आत्मा के रूप में चित्रित किया है। राष्ट्र के प्रति प्रधानमन्त्री इंदिरा गांधी की कर्तव्यनिष्ठा को एवं उसके बलिदान को चित्रित किया गया है। नरेन्द्र अरुण के नाटककार ने प्रकारान्तर से इसमें देश की समस्याओं चुनाव की प्रक्रिया, गरीबी, बेरोजगारी तथा नेताओं की कर्तव्य-विमुखता को भी प्रकाशित किया है। नाटक में स्वामी, महिला, पुरुष, बेटी आदि पात्र व्यक्ति-रूप में नहीं अपितु वर्गीय चरित्रों के रूप में प्रयुक्त हैं।

संग्रह का दूसरा नाटक 'समस्याओं के रक्तबीज' देश में समय-समय पर उगने वाली घातक प्रवृत्तियों को समक्ष लाने वाला नाटक है। समस्याओं के रक्तबीज जन्मते रहते हैं। प्रगति के लिए घातक इन रक्तबीजों के उन्मूलन की समस्या का हल कैसे हो, यही नाटक की मुख्य चिन्ता है।

संग्रह के तीसरे नाटक 'सीमा की ओर' में देश की सीमा-सुरक्षा के दायित्व की ओर संकेत किया गया है। अरुण के ही 'लद्दाख की ओर' नाटक की तरह इस नाटक का विषय भी देश-प्रेम है। आज आवश्यकता है, गंगा जैसी मां की और शेखर जैसे पिता की जो सीमा के निमित्त कर्तव्य का पालन करें।

'जय बांगला' जैसा कि नाम से ही परिज्ञात है, 'बांगला देश' के बनने की कथा पर आधारित नाटक है। नाटक में 'सायरा' नारी के शक्तिरूप, आदर्शरूप की प्रतीक है। कहना न होगा 'सायरा' पात्र से पाठक 'इंदिरा गांधी' के व्यक्तित्व की ध्वनि निकाल सकते हैं।

इस 'इतिहासवृक्ष' का अन्तिम पुष्प है 'वापसी'। 'वापसी' में भारतीय गांव की सोंधी माटी की गंध का नाट्यांकन है। नाटक का मुख्य पात्र 'सोहन' गांव से शहर तथा शहर से गांव लौटकर, अपनी ग्रामीण संस्कृति को महत्त्वपूर्ण मानता है। वह गांव के कार्यों में जी-जान से जुट जाता है। शहर का मारा-मारी और होड़ा-होड़ी भरा वातावरण उसे रास नहीं आया। लेखक ने गांव को आबाद रखने की धारणा पर बल दिया है—"मैं आपको छोड़कर कभी भी बाहर नहीं जाऊंगा बापू। तुम्हारे साथ मिलकर खेतों में काम करूंगा। मेहनत से सोना उगाऊंगा। अधर्म और पाप की कमाई को हाथ तक न लगाऊंगा।"[1] नरेन्द्र अरुण का ही एक और नाटक संग्रह 'कचनार' भी है।

भारत-पाक युद्ध (1965) से प्रभावित 'शहीद प्रकाश' नाटक भी देश प्रेम की भावना को मुखरित करने वाला काहनसिंह जमाल का पद्य नाटक है।[2] 'शहीद प्रकाश' नाम नाटक के

1. इतिहासवृक्ष-वापसी; पृ० 135।
2. शहीद प्रकाश (1967), के० एस० जमाल; प्रकाशक : कुमार सन्ज सोलन हिं० प्र०।

नायक 'प्रकाश' के नाम पर रखा गया है। शकुन्तला नाम की एक लड़की के जोशीले और देश-प्रेम से पूर्ण भाषणों को सुनकर कालेज का छात्र प्रकाश अपने मां-बाप के सारे तर्कों को दर-किनार कर सेना में भर्ती हो जाता है और स्यालकोट क्षेत्र में, शत्रु के अनेक टैंकों को ध्वस्त करता हुआ, अन्त में वीर-गति को प्राप्त होकर 'शहीद' कहलाता है। नाटक में, प्रकाश और शकुन्तला का व्यक्तित्व अच्छा बन पड़ा है पर प्रकाश की प्रेमिका शीला का चरित्र दुर्बल है। नाटक की भाषा पद्यमयी है परन्तु अनेक स्थलों पर ये पद्य कविता के लम्बे-लम्बे खंड हो गये हैं। भाषा पर उर्दू का अधिकाधिक प्रभाव है। इसके लिए नाटककार के अन्दर का उर्दू का शायर जिम्मेदार प्रतीत होता है।

कवि नाटककार रामकृष्ण कौशल का 'तीन अध्याय'[1] नाटक संग्रह स्वयं में 'सत्याग्रह', 'इकाई' और 'नर्तकी' ये तीन लघु नाटक समेटे हुए है। 'सत्याग्रह' का मुख्य पात्र संजय है जो मिल-मजदूरों के हितों के लिए सत्याग्रह तक करने का निर्णय लेने से भी नहीं डरता। वैसे नाटक में कहीं सत्याग्रह नहीं होता है। हां, सत्य के आग्रह की ध्वनि ज़रूर उभरती है। नाटक, मिल-मजदूरों की समस्या से दो-चार होता है। मिल मालिकों व श्रमिकों में किस प्रकार आपसी समझ द्वारा सम्बन्धमाधुर्य तथा उत्पादन वृद्धि की जा सकती है, नाटक यह दर्शाने में समर्थ है।

तीन अध्याय का दूसरा लघु नाटक 'इकाई' है। नाटक हिन्दु-मुसलमान और सिख पात्रों के द्वारा जातीय सौहार्द तथा पारस्परिक मेल-जोल बढ़ाकर, साम्प्रदायिक और भावात्मक एकता के उद्देश्य को लेकर है। वैसे इस नाटक का अन्त 'नाटकीय' है। पात्रों में सईदा और रामदास को रेखांकित किया जा सकता है। इस लघु नाटक का कथा-विन्यास शिथिल ही है।

'नर्तकी' लघु नाटक महाराणा खेतड़ी के दरबार में नाचने वाली एक नर्तकी के साहस, नैतिक बल और गायन चातुर्य पर आधारित है। स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर नर्तकी के इस वाक्य का कि—"पतितों का उद्धार करने वाले को ही पतितों से इतनी घृणा?"[2]—इतना असर हुआ कि स्वामी जी उसका गाना सुनने को विवश हो गए। स्वामी जी गायन भजन सुनकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने महाराज से कहा कि—"आपकी गायिका विदुषी है राजन! इससे वह संकेत मिला है जिसे मैं जीवन पर्यन्त याद रखूंगा।"[3] नाटक की घटना स्वामी जी के जीवन की सत्य घटना से अनुप्राणित है। प्रकारान्तर से इस नाटक की ध्वनि नर्तकी के बदले स्वामी जी के व्यक्तित्व की महानता को ही द्योतित करती है। वैसे यह नाटक साधारण है। यह पतितों के उद्धार की समस्या को उठाते हुए भी पूरी तरह से अभिव्यंजित नहीं कर पाया है।

मंचीय गतिविधियों से सक्रिय रूप से जुड़े नरेन्द्र चौहान के सामाजिक समस्याओं को मुखरित करते 'मैं जलती ही रही'[4] और 'आखिर कब तक'...[5] ये दो लघु नाटक-संग्रह तथा "और दौड़ो जिजीविषा"[6] यह पूर्ण नाटक प्रकाश में आए हैं। 'मैं जलती ही रही' नाटक में समाज के ठेकेदार या उद्धारक अथवा स्वयंभू भगवान् मंत्री आदि कुछ नीच जनों के अत्याचार से

---

1. तीन अध्याय; रामकृष्ण कौशल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6।
2. तीन अध्याय; (नर्तकी) पृ० 104।
3. वही।
4-6. तीनों नाटक 1984 में मुद्रित; सम्पर्क सूत्र—सचिव, कलामंदिर, पोस्ट बाक्स नम्बर-35, शिमला 171001।

संतप्त ज्योति को मंत्री की हत्या के आरोप में फांसी की सजा हो जाती है। उसके साथ मास्टर साहब को भी फांसी हो जाती है। ज्योति जो जीवित रहकर सामाजिक अत्याचारों बदनसीबियों की आग में झुलसती रही, मरने पर चिता में से मानो कहती है कि—"हां, मैं जलती...ही रही, सारी उम्र जलती ही...रही। आ...हा..."[1] नाटक में यद्यपि लोकगीतों का उपयोग हुआ है परन्तु यह कहीं स्पष्ट नहीं होता कि ज्योति की यह नाट्यकथा लोक की किसी सत्य-घटना पर आधृत है। नाटक-साधारण है। अनेक स्थानों पर संवादों की परिपक्वता तथा अतर्कशीलता अखरती है। नाटक का शीर्षक भी नाटक की यथार्थवादी प्रवृत्ति के अनुरूप नहीं है।

इसी संग्रह का दूसरा लघु नाटक 'ये मासूम आंसू' है। यह एक मासूम, गरीब भिखारिन बच्ची की दारिद्रयवार्त्ता के माध्यम से समाज की सहानुभूति बटोरने की कोशिश में व्यक्त हुआ है। नाटक में पागल बाबा और भिखारिन बच्ची के चरित्र अच्छे उभरे हैं।

चौहान का दूसरा नाटक संग्रह, 'आखिर कब तक...' है, जिसमें 'आखिर कब तक...' तथा 'और लहरें उठती रहीं...' ये दो छोटे नाटक हैं। पहला नाटक देश में पनप रही बेईमानी, कपट वृत्ति तथा मूल्य हीनता के मुद्दों को उठाता है। लेखक के अनुसार आज तीस (अब चालीस) बरस हो गए हैं हमें आज़ाद हुए। हमें यद्यपि विकास के अनगिनत अधिकार प्राप्त हैं तो भी हमारा चरित्र विकसित होने के बदले संकुचित हुआ है। चरित्र हीनता पनपती जा रही हैं। यह आखिर कब तक पनपती रहेगी? नाटक के तेवर और मुद्रा प्राश्निक हैं। 'और लहरें उठती रहीं' नाटक कुछ जीवन, कुछ मृत्यु की रहस्यमयता तथा दुर्बोधता से तर्क करता है। जीवन के बाद बहुत से प्रश्न-चिह्न हैं। जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता मौत को झुठलाया नहीं जा सकता। इन्सान का जीवन एक द्वीप है और भावनाएं लहरें हैं, जो द्वीप से टकराकर लौट जातीं हैं। यह क्रम अगणित बार अनुवर्तित होता है और कभी ऐसा भी समय आता है जब द्वीप अपने अस्तित्व को बचा नहीं पाता। जीवन समाप्त हो जाता है और हमारी जिज्ञासाएं हमारे प्रश्न, हमारी आकांक्षाएं बनी रहतीं हैं। नाटक में 'पूजा' पात्र के माध्यम से जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता को दर्शाने का प्रयत्न है।

'और दौड़ो जिजीविषा' नरेन्द्र चौहान का पूरा नाटक है। नाटक में विश्व मानव की अंतहीन दौड़, उसकी तेजी के साथ विश्व के छोर को पकड़ लेने की कोशिश आखिर उसे कहां ले जाकर छोड़ेगी। लेखक के अनुसार—'दौड़ना उसकी मनोवृत्ति-सी बन गई है! मगर वह कहां दौड़ रहा है? उसका लक्ष्य क्या है? यही तो है जिजीविषा!" समाज के विभिन्न वर्गों के पात्र-डाक्टर, प्रोफैसर, विधवा, पागल, बच्ची, कोढ़ी सभी जीने की उत्कट इच्छा से प्रेरित हैं। यह नाटक नरेन्द्र के पूर्ववर्ती नाटकों की अपेक्षा पठनीय एवं मंचीय है। नाटक के संवाद, पहले नाटकों की तुलना में अधिक त्वरा, सार्थकता तथा नाट्यभाषा का निर्वाह करते हैं।

'पत्नी ऑन ट्रायल[2]' मस्तराम कपूर का बम्बई जैसे महानगरों में रिहायशी किराए के मकानों के न मिलने की समस्या को लेकर लिखा गया दो अंकीय नाटक है। मैंने इसकी समीक्षा करते हुए लिखा था कि—"बम्बई जैसे महानगरों में जरूरी है जीने के लिए एक मकान, मकान के लिए जरूरी है विवाहित होना, और विवाहित होने के लिए जरूरी है जात-बिरादरी, भाषा

---

1. मैं जलती ही रही—पृ० 61।
2. पत्नी ऑन ट्रायल (1985); मस्तराम कपूर; प्रकाशक : लेखक मंच 79-बी पाकेट-3 मयूर विहार नयी दिल्ली-1।

धर्म और प्रान्त के खूंटे। ये खूंटे जब तमाम सहज मानवी सम्बन्धों की समतल जमीन पर अवरोधों की तरह अड़ जाते हैं तब इनकी उपयोगिता प्रश्नित हो जाती है। मस्तराम कपूर ने 'पत्नी ऑन ट्रायल' में इन सारे खूंटों को हास्यास्पद करार देते हुए अनुपयोगी सिद्ध किया है। यह नाटक रिश्तों की कोमलता पर स्वार्थी नागदंशों की भयावहता से सावधान करता है। दूसरे शब्दों में नाटक विजातीय विवाह की आवश्यकता, व्यर्थ के वंशाभिमान, झूठी इज्ज़त की परवाह तथा मां-बाप की इच्छाओं को बच्चों के बालिगपन पर बलात् लादना जैसे मुद्दों से भी दो-चार होता है। नाटककार ने एक हल्के-फुल्के शीर्षक से एक गहरे सामाजिक सरोकार को अभिव्यक्ति दी है।

प्रस्तुत नाटक की केन्द्रीय संवेदना मध्यवित्तीय दायरों की विवशता में घिरे युवजनों की विडम्बना को सामने लाती है जो महानगरों में अपने अस्तित्व की खातिर पत्नी जैसे महत्त्वपूर्ण एवं नाजुक रिश्तों को भी मज़ाक का विषय समझते हैं। नाटक बम्बई के माध्यम से सभी महानगरों के चरित्र को अभिनीत करता है।"[1] नाटक की कथायष्टि यद्यपि अधिक संघर्षजीवी तथा वांछित त्वरा-आवेग से समन्वित नहीं है तो भी नाटक, संवादों की रोचकता में—अच्छा बन पड़ा है। नाटक पूर्व मंचित है। डॉ० मस्तराम कपूर ने बच्चों के लिए भी नाटक लिखे हैं।

'नवरंग'[2] कथाकार, कवि रमेश शर्मा के—(1) शाम के मचान से चांद का शिकार (2) दम तोड़ रही है रात भी (3) सूखे पत्तों-सी आवारा रातें, (4) सांप बूटी तीन हाथ एक अंगूठी, (5) सौतन बन गई आस, (6) सरगम मिलन के गीत की, (7) अजात शत्रु की विजय, (8) मृत्यु की मौत तथा (9) निकैमो पुरसता—इन नौ लघु नाटकों का पहला संग्रह है।

नवरंग का पहला लघु नाटक 'रात के मचान से चांद का शिकार' ज़बर्दस्ती ओढ़ी हुई परम्पराओं के विरुद्ध आधुनिक पुरुषों की युवा मानसिकता की लापरवाही तथा स्त्रियों की परम्परा के निर्वाह की अथवा एक प्रकार से आधुनिक और पुरातन मूल्यों में टकराव की कहानी है। मृदुला और सत्यकाम के ज़बर्दस्ती कराए गए विवाह की परिणति विच्छेद में होती है।

नवरंग का दूसरा रंग 'दम तोड़ रही है रात भी' एक किन्नर किशोरी, नरयूम, उसकी सहेली सेंवत, सैनिक नरजीत नेगी, तपदन छेरिंग—नरयूम का मित्र तथा यांग सुमन—सेंबत का प्रेमी, इन पात्रों के इर्द-गिर्द बुनी गई साहस और प्रेम की एक मनोरंजन कथा है। नाटक में, किन्नौर और मणिपुर के कुछ शब्द प्रयोगों द्वारा वहां की मानसिकता तथा संस्कृति के मूल्यों को उभारने का प्रयत्न है।

नवरंग का तीसरा रंग 'सूखे पत्तों-सी आवारा रात' लघुनाटक स्वार्थी मूल्यों का पर्दाफाश करने वाला तथा कर्त्तव्य के अहसास का द्योतक है।

नवरंग-नाटक संग्रह का 'सांप बूटी, तीन हाथ, एक अंगूठी' लघु नाटक नाम की दृष्टि से आम नाटकों के ढर्रे से हट कर एक नवीन दृष्टि को उजागर करता है। पहाड़ी पृष्ठभूमि को अपना मंच बनाता हुआ यह नाटक रोमैंटिक बोध को प्रस्तुत करता है। यह नाटक अपने मूल में रेडियो नाटक है और आकाश वाणी के शृंखला नाटकों में स्थान पा चुका है। वैसे नवरंग के प्रायः सभी नाटक अपने मूल रूप में रेडियो नाटक हैं।

नवरंग के अगले नाटकों, 'सौतन बन गई आस' में दया, माया, ममता जैसे मूल्यों, 'सर-

---

2. दैनिक हिन्दुस्तान, दिनांक 8-6-86 नयी दिल्ली।
3. नवरंग (1985); रमेश शर्मा, सत्साहित्य प्रकाशन, 205-बी, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6।

गम मिलन के गीत की' में, प्रेम की सघन अनुभूति है। 'आजात शत्रु' कुल अढ़ाई पृष्ठों में मुद्रित नाटक हैं इसमें गांव के भोले कृषक-जनों की सरलता का, 'मृत्यु की मौत' में मनुष्य के आर्थिक वैभव में मानव-मूल्यों के नवीनीकरण का, तथा 'निकैमो पुरसता' में आधुनिक स्त्रीत्व के आठ स्वरूपों का पुरुष की मनोदशा पर प्रभाव का वर्णन है। 'मृत्यु की मौत' नाटक के संवाद नाटकीय नहीं अपितु पाठ्य हो गए हैं। शेष नाटकों में रमेश शर्मा के नाटककार ने अच्छी नाट्य स्थितियां तथा समर्थ नाट्यभाषा का विधान किया है। कथ्य की दृष्टि से नाटक रोमैंटिक बोध को नहीं छोड़ते। कहीं-कहीं मूल कथा से रमेश शर्मा का नाटककार विषयान्तर भी हो जाता है।

रमेश शर्मा का दूसरा नाटक-संग्रह 'मेगनोलिया का फूल कमल'[1] है। इस नाटक संग्रह में 'मेगनोलिया का फूल कमल' 'जहां चुप, वहां साया' तथा 'नया दफ्तर पुराना अफसर' ये तीन लघु नाटक संग्रहीत हैं। सभी नाटक समकालीन सामाजिक समस्याओं से जूझते हैं। रोमैंटिक बोध के आस-पास रहते हुए भी ये नाटक यथार्थ का साथ नहीं छोड़ते हैं। लेखक के अनुसार "इन नाटकों में, समकालीन अर्थ-संदर्भ तथा लाल फीताशाही को युगीन संदर्भ में पेश किया गया है।"[2] पिछले नाटकों की परम्परा में रमेश शर्मा का नाटककार, इस संग्रह में परिपक्व हुआ है।

'नदी और रेत' सुदर्शन वशिष्ठ का दो लघु नाटकों का एक ऐसा युग्म है जिसमें एक तो 'नदी और रेत' तथा दूसरा 'अभिषेक' लघु नाटक संकलित हैं। 'नदी और रेत' में लेखक ने महर्षि व्यास के व्यक्तित्व को मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की है। "पांच अंकों के इस नाटक की ग्यारह सितम्बर 1988 को दैनिक ट्रिब्यून में समीक्षा करते हुए मैंने कहा था कि इस नाटक की कथायुक्ति श्री कृष्ण द्वैपायन और इन्द्र के अखाड़े की शापभ्रष्ट अप्सरा घृताची के संक्षिप्त प्रेम-प्रसंग, पुत्र शुकदेव के सांसारिकता के मोह को त्याग कर ब्रह्मज्ञानी हो जाने के कारण पुत्र मोहवश उपजी श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास की भावाकुलता, क्षत विक्षतांग विक्षिप्त-से अश्वत्थामा का कातरतापूर्ण पश्चात्ताप विलाप, अर्जुन की असमर्थता तथा अन्त में व्यास के मरण से जुड़ी घटनाओं में विस्तारित है। भाषा, पद्यनुमा संवादमयी है। स्थान-समयानुसार यथा संभव रंग-अभिकल्पन भी है···किन्तु इस नाटक की कथायष्टि पर विचार करें तो नाटक असल में तीसरे अंक से आगे नहीं बढ़ता। चौथे अंक का अश्वत्थामा का विलाप और अर्जुन-वेद व्यास के आगमन कोई अर्थ सिद्धि नहीं करते। पांचवें अंक में वेद व्यास का मरण भी उस मन्तव्य की पूर्त्ति से विलग है जिसे लेकर नाटक लेखक ने यह नाटक लिखा।"

'अभिषेक' तीन अंकीय और चार पात्रीय लघु नाटक है जो महाभारत के युद्ध में हारे हुए दुर्योधन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा की उस त्रासदी को व्यक्त करता है जिसमें हारे हुए योद्धा का जीवित बच निकलना कितना यन्त्रणापूर्ण होता है। इस नाटक में संवादों और घटनाओं की विरोधाभासी स्थितियों के बावजूद नाटकीय संवेदना का माहौल बनता है। पहले नाटक की तुलना में इसके संवादों में प्रवाह और उद्देश्यपरकता है।

मंचीय नाटकों की इसी परम्परा में इन्हीं पक्तियों के लेखक का एक नाटक 'बीच का आदमी' है।[3] 'बीच का आदमी' आज के आदमी की चालाकी, उसकी छलछद्मता का भंडाफोड़

---

1. मेगनोलिगा का फूल कमल (1987), रमेश शर्मा, राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर नई दिल्ली।
2. वही—'कृतिकार का नमस्कार' में।
3. बीच का आदमी—ओम्प्रकाश सारस्वत। यह नाटक 'कामेश कला केन्द्र' शिमला द्वारा काली बाड़ी के मंच पर अभिनीत किया गया।

करने वाला एक ऐसा नाटक है जो अपने कथ्य में, देश के साथ गद्दारी करने वाले जनों, घूसखोरी, नशाखोरी तथा स्वार्थ के अंधकूपों में गिरी मानसिकता का उद्घाटन करने वाला नाटक है— "दोस्तो एक बीच का आदमी है जो हमारे और आपके, इस-उसके, जिस-तिसके मसलन हर-दो के बीच अपनी सत्ता बनाए हुए है। यह, जहां भी रोटी के टुकड़ों के लिए संघर्ष करते हुए जरूरतमंदों को देखता है वहां यह बिचौलिए की भूमिका निभाने पहुंच जाता है। यह खूब जानता है दूसरे की मेहनत को अपने पनीर के टुकड़ों में बदलना।"[1] नाटक, प्रकारान्तर से देश के प्रति प्रेम के मूल्य को प्रतिष्ठित करता है। इस मूल्य की प्रतिष्ठा में पारस, क्षेत्रपाल और मीरा की विशिष्ट भूमिकाएं हैं।

शिमला में कुछ ऐसे भी रंगकर्मी-नाटक लेखक हैं जिनके नाटक प्रकाशित भले ही न हुए हों परन्तु जिन्होंने हिमाचल के हिन्दी-नाटक के विकास में पर्याप्त योगदान दिया है। ऐसे रंग हस्ताक्षरों में श्रीनिवास जोशी, खेमराज गुप्त सागर, महेश चन्द्र सक्सेना, जगदीश शर्मा, सी० आर० बी० ललित आदि उल्लेख्य हैं।

आकाशवाणी शिमला के लिए नाटक-प्रहसन लिखने के अतिरिक्त श्रीनिवास जोशी ने कुछ एकांकी, लघुनाटक लिखे हैं जिन्हें शिमला रंगमंच के अतिरिक्त पंजाब तथा उत्तरप्रदेश के रंगमंचों पर भी खेला गया है। श्रीनिवास जोशी के 'और एक दिन', 'चम्पाकली उर्फ लम्बी बीवी', 'बीमार देव', 'आखिरी सवाल,' 'प्रेम पत्र', तथा 'झूठी दीवार' आदि अभिनीत हुए नाटक उल्लेख्य हैं। 'और एक दिन में' गर्मी आदि सीज़न के दिनों में किसी भी पहाड़ी शहर के निवासियों पर, आने वाले रिश्तेदारों, मित्रों, मित्रों के मित्रों या परिचितों का जो बोझ पड़ता है उसका वास्तविक चित्रण है। 'चम्पाकली उर्फ़ लम्बी बीवी' एक ऐसी हास्य-व्यंग्य प्रधान रचना है जिसमें, कुंआरे लोगों को मकान न मिलने का चित्रण है। इसमें मकान मालिकों पर व्यंग्य है। 'बीमार देव' बच्चों के लिए लिखा गया लघु नाटक है। 'आखिरी सवाल' जर्मन लेखक 'फ्रांज क्रांति' नामक नाटककार के एक एकांकी का हिन्दी अनुवाद है जो अपने प्रस्तुतीकरण में सराहा गया। 'प्रेम पत्र' में एक ऐसे युवक का वर्णन है जो प्रेम तो करना चाहता है परन्तु लड़की को सामने पाकर उसका चेहरा 'खुमानी की तरह ज़र्द' पड़ जाता है, और दिल उतराई पर जाते ऐसे बाईसिकल की तरह धड़कता है, जिसके ब्रेक काम न कर रहे हों'। उसके दोस्त उसे बेवकूफ बनाकर लूटते हैं। 'झूठी दीवार' आज की सामाजिक बुराइयों पर करारी चोट करता है। इसमें भाषा, धर्म, जाति, रंग की फर्जी दीवारों को महत्त्वहीन दर्शाया गया है।

खेमराज गुप्त सागर हिमाचल के वरिष्ठ लेखक हैं। इन्होंने कितने ही नाटक, झलकियां रेडियो के लिए तथा कुछ रंग नाटक भी लिखे हैं। इनका एक प्रसिद्ध नाटक 'रूठा जल' चम्बयाली लोक गाथा 'सुकरात' पर आधारित है। राजा शैल वर्मन पर देवप्रकोप हुआ और जलदेवता रूठ गए। चम्बा में भयंकर सूखा पड़ा। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गई। अंत में जलदेवता ने रानी को स्वप्न में आकर, राजा, राजकुमार अथवा स्वयं रानी को भी जीवित समाधि लेने का आदेश दिया। रानी ने जीवित-समाधि ली। कूल्ह में पानी बहा। नागरिकों की प्यास बुझी। रानी ने अपना बलिदान देकर, जनता की जान बचाई। नाटक यशोबर्मन् की रानी के बलिदान, त्याग तथा अपनी प्रजा के प्रति प्रेम-आदर के मूल्यों से युक्त है।

कुशल मूर्ति-शिल्पी प्रो० महेश चन्द्र सक्सेना एक अच्छे साहित्कार भी हैं। सक्सेना का

---

1. बीच का ग्रादमी पृ० 1।

व्यक्तित्व एक चित्रकार के साथ-साथ कहानीकार, कवि एवं नाटककार का भी है। सक्सेना ने कई नाटक लिखे हैं जो रेडियो के अतिरिक्त शिमला के मंच पर अभिनीत भी हुए हैं। इनके 'फिलासफर की डायरी,' 'अमर सुकरात' तथा 'कुर्बानी की रात', कालेज-मंच पर प्रदर्शित लघु नाटक हैं। तथा 'वरद हस्त' (कोणार्क सूर्य मंदिर पर आधारित) 'खजुराहो का शिल्पी' रेडियो से तो खूब प्रसारित हुए मंच पर भी खेले और सराहे गए। सक्सेना के नाटककार के पास मंच की तकनीक तथा नाट्य स्थितियों की अच्छी जानकारी है।

प्रसंग की इसी कड़ी में के० एस० राणा परदेसी के नाटक भी विवेचन योग्य हैं। राणा के 'देश द्रोही', 'खून का बदला', 'अहिंसा की विजय', 'दो पक्ष', 'राजतिलक' तथा 'संकल्प' ये नाटक प्रकाशित हैं। नाटक जगत्, जनसाहित्य तथा पंजाव सौरभ आदि में ये द्रष्टव्य हैं। राणा के नाटकों के विषय भी सामजिक हैं। समाज की सामयिक समस्याओं को राणा ने वाणी दी है।

लोक संस्कृति को उजागर करते नाटक

हिमाचल के नाटककारों ने अपनी संस्कृति तथा यहां की मिट्टी की गंध को भी अपने नाट्यलेखन का विषय बनाया है। अपनी संस्कृति को आधार बनाकर लिखे गए नाटकों में पहला प्रयास, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित 'तीन लोकनाटिकाएं[1] नामक लघु नाट्य पुस्तिका से ही सामने आता है। तीन लोकनाटिकाएं संग्रह में 'लाटी शर जंग', 'पवाड़ा झांखों अजबा', तथा 'सुन्नी भुंकू' ये तीन लोकनाटक संकलित हैं। 'इन तीनों (नाटकों) के कथानक लोकजीवन से सम्बन्धित हैं।[2] 'लाटी शर जंग हिना डंडुब', लोक जीवन के अचेतन तल के कुछ भेद भरे संस्कारों की घटनापूरक अभिव्यक्ति है। 'पवाड़ा झांखो अजबा' सिरमौर के राजगढ़ क्षेत्र के ग्रामीण जीवन का एक तथ्य है। 'सुन्नी भुंकू' प्रीत की पेचीदी उलझन है। घटना काल अलग-अलग हैं। पहली घटना यदि ढाई हजार वर्ष प्राचीन है तो दूसरी ढाई सौ साल पुरानी और तीसरी कोई तीन-सौ साल। भाषा की दृष्टि से तीनों नाटक पद्यात्मक हैं। नाट्य संरचना की दृष्टि से 'लाटी शर जंग'...' को छोड़कर शेष दोनों नाटक अति साधारण हैं। हां इन्हें नाटिकाएं नाम देने की मजबूरी समझ नहीं आई। क्योंकि नाटिका में नायिका का चरित्र मुख्य, या स्त्री पात्रों की अधिकता, शृंगार रस की प्रमुखता तथा कोमल वृत्तियां रहती हैं जबकि उक्त नाटकों में, ऐसी कोई बात नहीं है।

लोक संस्कृति को आधार बनाकर लिखे गए हरिराम जसटा के तीनों नाटक, 'गांधी के देश में',[3] 'त्यागमूर्ति',[4] और 'बर्फ़ का राजा',[5] उल्लेख्य हैं। 'गांधी के देश में' संग्रह में आठ लघु नाटक सम्मिलित किए गए हैं जिनमें 'भ्रातृ प्रेम' में राम, भरतादि भाइयों का प्रेम 'प्रेम और मृत्यु' में सावित्री-सत्यवान् की कथा, 'संन्यास' में गौतम बुद्ध के महाभि-निष्क्रमण, 'राजा भर्तृहरि' में भर्तृहरि के त्यागी जीवन, 'गांधी के देश में' भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, 'अनुमति पत्र' में शराबबंदी,

---

1. तीन लोकनाटिनाटिकाएं (1977); मुख्यसम्पादक : हरिश्चन्द पराशर।
2. वही—पृष्ठभूमि में, पृष्ठ VII।
3. गांधी के देश में (1982) हरिराम जसटा, प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
4. त्याग मूर्ति (1986) आर्यप्रकाशन मंडल नई दिल्ली-110031।
5. बर्फ का राजा (1986) वही।

,महासू देव' में महासू देव की सामर्थ्य तथा 'पूजनीय नारियां' में नारी के प्रति सम्मान की भावना का प्रकाशन है। सभी नाटक हमारी संस्कृति के महनीय मूल्यों, त्याग, प्रेम, पितृभक्ति श्रद्धा एवं देव विश्वास को उजागर करते हैं।

'त्यागमूर्ति' तीन अंकों का भरत के जीवन को केन्द्र में रखकर लिखा गया सांस्कृतिक नाटक है। लेखक का मानना है कि—"मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक भावना को उन्नत किये बिना केवल आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं को बदलने की योजनाओं का पूर्णत सफल होना कठिन ही है।"[1] नाटक के संवादों में कई स्थानों पर लगता है कि लेखक व्यावहारिकता से दूर चला गया है।

हरिराम जसटा का तीसरा नाटक संग्रह 'बर्फ़ का राजा' है। इसमें छोटे-छोटे छह नाटक हैं। 'राजमाता देवी यशोवती' में काश्मीर के शासक दामोदर की वीर पत्नी यशोवती की वीरता तथा तत्कालीन युद्ध की आचार संहिता, 'जांच आयोग' में हमारी अहमन्यता और अहं-कार, 'नारी बलिदान' में नारियों के बलिदान द्वारा प्रकारान्तर से इस नारी वर्ग के प्रति सहानु-भूति तथा आदर, 'चन्द्रताल की परी' में लाहौल की एक प्रेम गाथा, 'खशिया कदारा' में बड़ों का छोटों के प्रति अमानुषिक व्यवहार तथा 'बर्फ़ का राजा' में लोक गाथा में प्रचलित शिव-पार्वती विवाह की कथा प्रस्तुत की गई है। लेखक ने लोक संस्कृति के अनेक पक्षों को समेटते हुए उसे नाट्यधर्मी बनाने की कोशिश की है। वैसे इस संग्रह के नाटकों में भी संवादों की दीर्घता तथा कहीं-कहीं अवसर विरुद्धता नाटकीयता को आघात पहुंचाती हैं।

लोक संस्कृति के ही पक्षों को समेटते, नरेन्द्र अरुण के भी दो नाटक 'बसोआ' और 'मोहणा' ('खेल-खेल में' संकलित) भी चर्चा के योग्य हैं। 'बसोआ' बैसाखी के दिन मनाया जाने वाला त्योहार है। यह लाहल, बसोआ, बठीहा अथवा रली आदि नामान्तरों से हिमाचल प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। लेखक ने राजा कुनिहार के यहां से इसका मूलोद्गम माना हैं। कथानक को कुछ किंवदंतियों तथा कुछ तथ्यों सें विनिर्मित किया गया है। लेखक का उद्देश्य 'बसोआ' की संस्कृति तथा इसके माध्यम से लोकाचार का चित्रण दर्शाना है।

'मोहणा' जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश) में प्रचलित एक लोकगीत को आधार बना कर लिखा गया नाटक है। यह एक प्रेम कथा को लेकर चलने वाला रोमैण्टिक नाटकों की परम्परा का नाटक ठहरता है, यद्यपि अपने मूलरूप में यह लोक शैली के नाटकों में गण्य है।

इसी शैली का एक और नाटक 'घाटियां गवाह हैं' भी इन पंक्तियों के लेखक का है जो पालमपुर से 21 किलोमीटर दूर थुरल नामक कस्बे के पास 'ग्वाल टिल्ला' नामक स्थान से जुड़ी एक सच्ची प्रेम घटना पर आधारित है। नाटक में कुछ तथ्यों तथा कुछ कल्पना का सहारा लिया गया है। नाटक लोकगीतों की प्रयुक्ति तथा स्थानीय भाषा के शब्द-प्रयोगों के द्वारा लोक मान-सिकता को अभिव्यक्ति देता है। नाटक का मूल मुद्दा है—

असां तेरे तांई जीणा मरणा
जग बैरी जिदगी मंगो जे तांभी
असां देई कनें प्यार करना।

गौतम व्यथित हिमाचल के साहित्य सर्जकों में एक प्रतिष्ठित नाम है। कवि, कहानी कार, होने के साथ-साथ गौतम का व्यक्तित्व संस्कृति के संरक्षण सम्बर्धन में भी कृतकार्य हुआ है।

---

1. त्यागमूर्ति, पृष्ठ 7।

व्यथित के अब तक 'स्मृति-शिला', 'सम्वत् के राग पर', 'डफ की ताल पर' तथा 'भ्रम के भूत' ये नाटक मंचित हैं तथा इनमें से पहले तीन नाटक 'अतीत के रंग'[1] नाटक-संग्रह में प्रकाशित हैं।

'स्मृति शिला' नेरटी (कांगड़ा) में बने मन्दिर की एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। घटना चम्बा नरेश राजसिंह तथा कांगड़ा के कटोच वंशीय महाराजा संसारचंद से जुड़ी है। नाटक में 'किस प्रकार चम्बा नरेश बिना सिर के भी अढ़ाई घड़ी लड़ते रहे और अंत में एक शिला पर अपने हाथ का निशान छोड़कर राज्य में भ्रातृत्व बढ़ाने का संदेश देकर परलोक चले गए, वर्णित है। नाटक में आधुनिक संवेदना को उभारने की चेष्टा है। नाटक, कथागायक भाटों की शैली में रचित है।

दूसरी रचना एक लोकगीत 'ढोलरू' को आधार बनाकर एक कूल्ह के लिए दिए गए बलिदान की गाथा पर अवस्थित है। इसमें बलिदान के मूल्य को उकेरा गया है।

तीसरे नाटक में, रामसिंह पठानियां की 'वार' को आधार मान कर देशद्रोह, स्वार्थसिद्धि तथा घर के भेद को बताकर शत्रु पक्ष को पुष्ट करना जैसी कुप्रवृत्तियों से सावधान रहने का संदेश है।

चौथा नाटक आज के विकास-आयामों को समेटता हुआ गांवों में किस प्रकार और विकास हो सकता है, इसे दर्शाता है।

हास्य-व्यंग्य को उभारते नाटक

नाट्य के माध्यम से हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति को उभारना मुश्किल काम है। समस्या की विद्रूपता को समझे बिना हास्य-व्यंग्य की सृष्टि नहीं हो सकती। हिमाचल के नाटककारों ने इस ओर भी अपनी लेखनी उठायी है। महाराज कृष्ण काव इस क्षेत्र के उल्लेखनीय नाटककार हैं। काव साहब के 'नियम नहीं है', 'प्रेम विभाग' तथा 'पंडितजी आ गए' ये तीनों लघुनाटक सारिका में प्रकाशित हैं।[2] वैसे तो ये तीनों नाटक व्यवस्था की विसंगतियों पर कारगर चोट करते हैं, किन्तु इसके साथ-साथ समाज की रूढ़ परम्पराओं को भी तर्जित करते हैं। 'प्रेम विभाग' में बड़ी व्यंजनापूर्ण शैली में मुख्यमंत्री के तथाकथित आदेश के तहत किस प्रकार एक नये विभाग 'प्रेम विभाग' की स्थापना की जाती है—रोचक है।

'नियम नहीं है' में किसी सही बात को भी अधिकारीगण किस प्रकार निपटाने के बदले लटकाते ही जाते हैं, यह कहते हुए कि नियम नहीं है, कोई प्रेसीडेंट नहीं है। लेखक का मंतव्य है कि यदि सरकारी काम में भी दिमाग का इस्तेमाल होने लगे तो सरकार और देश की काया ही पलट जाए।

तीसरा लघु नाटक 'पंडित जी आ गए' सामाजिक रूढ़ियों से जकड़े समाज की मानसिकता को पेश करता है,'कितने हीले-हवाले करके तो विमला जी में अंततः अपनी सहेली कमला को उसके घर खाना-खाने की स्वीकृति दी थी किन्तु क्या पता था कि पंडित जी के बताए ग्रहों की मार से भी ठीक उसी रोज बचा जा सकता है।' नाटक अच्छे खासे हास्य के माहौल की सृष्टि करता है। काव के नाटकार के पास स्थितियों को नाटकीय बनाने तथा संवादों को अव-

---

1. अतीत के रंग (1988) गौतम व्यथित, कांगड़ा-लोक साहित्य प्रकाशन नेरटी।
2. सारिका के अंक अगस्त 1988 में 'प्रेम विभाग', सितम्बर 1988 के अंक में 'पंडित जी आ गए', तथा अक्तूबर, 1988 के अंक में 'नियम नहीं है', प्रकाशित है।

संरानुकूल प्रयुक्त करने की कला है।

इसी प्रकरण में एक नाटककार कमल हमीरपुरी के नाटक 'लोक-परलोक'[1] को भी जोड़ा जा सकता है। नाटक धर्मराज, यमराज, नतर्की, यमदूतादि पात्रों के माध्यम से लोक-परलोक की चर्चा को बड़ी रोचक एवं हास्य-व्यंग्य की शैली में प्रस्तुत करता है। भाषा में आधुनिक तेवर हैं तथा कथ्य को अधिकारी और अधीनस्थ कर्मचारी वाले 'स्टाइल' में पेश किया गया है। नारद का यह वाक्य दृष्टव्य है—"आज यमराज जी का दफ्तर बन्द है? (घड़ी देखकर) साढ़े दस बज रहे हैं यहां कोई भी नहीं। न कर्मचारी, न कोई अधिकारी। कहां चले गए सब?" परंतु लगता है हमीरपुरी साहब ने यमराज और धर्मराज के विषय में ठीक जानकरी नहीं हासिल की। शास्त्रों के अनुसार यमराज और धर्मराज एक ही हैं। यमराज इसलिए कि वह यमपुरी का राजा है और धर्मराज इसलिए कि वह धर्मपरायण है—धर्मानुसार न्याय करता है। कमल हमीरपुरी रंगमंच से जुड़े कलाकार लेखक हैं। इनके अब तक दस नाटक पंजाब तथा हिमाचल के रंगस्थलों पर प्रदर्शित हो चुके हैं। जिनमें 'संतान', 'समाज', 'बुरे फंसे', 'माया', 'बलिदान' 'जीवन ज्योति', 'अनपढ़', 'टाहली मेरी ऐ', 'छिमादान' तथा 'लोक-परलोक' प्रमुख हैं। कमल चूंकि लोकसम्पर्क विभाग में हैं अतः लोगों की छोटी-छोटी समस्याओं को उठाकर वे गांवों-कस्बों में ऐसे नाटक करते हैं जो आज के युग की मांग के अनुरूप हैं।

रेडियो नाटक

यूं तो हिमाचल के सभी नाटककारों ने रेडियो के लिए नाटक लिखे हैं और पीछे विवेचित किए गए अधिसंख्य नाटक अपने रूप में रेडियो नाटक ही हैं परंतु रेडियो नाटकों के नाम से प्रायः किसी भी नाटककार ने अपनी रचनाएं प्रकाशित नहीं की सिर्फ इन पंक्तियों के लेखक को छोड़कर। इन पंक्तियों के लेखक का जो रेडियो नाटक संग्रह प्रकाशित है उसका नाम है 'चाहों के मन्दार'[2]।

'चाहों के मन्दार', 'संभावना' 'कादम्बरी', 'चतुरानन चाचा', 'कटे संदर्भ', 'मेघदूत और 'चाहों के मन्दार' इन छह रेडियो नाटकों का संग्रह है जिनमें 'संभावना', 'कादम्बरी' और 'चाहों के मन्दार' एक-एक घंटे की अवधि के तथा 'कटें संदर्भ' और 'मेघदूत' आध-आध घंटे की अवधि के और 'चतुरानन चाचा' पन्द्रह मिनट की अवधि का लघु नाटक है।

'संभावना' एक संघर्षशील युवा प्राध्यापक पारस तथा रुचि की ईमादारी और महत्वाकांक्षा को द्योतित करता हुआ खासकर प्राइवेट संस्थाओं में शिक्षा की तिजारत को उजागर करने वाला नाटक है। नाटक का मूल स्वर है—'सत्य की जीत की सम्भावना कभी नहीं मरती।'

'कादम्बरी' महाकवि बाण भट्ट की अमरकृति 'कादम्बरी 'का ही' रेडियो रूपान्तरण है। तीन-तीन जन्मों की कथा-यात्रा को नाटक में और भी सामयिक घटनाओं की प्रतिध्वनि द्वारा सामयिक बनाने का प्रयास है। कादम्बरी, निर्मल प्रेम के मूल्य की प्रतिष्ठा करने वाला नाटक है।

'चतुरानन चाचा' हास्य-व्यंग्य की सृष्टि करती एक लघु-रचना है जो साहित्य के साथ हो रहे बलात्कार तथा उसके प्रति गैर जिम्मेदाराना रुख को भाषित करती है। यह रचना

1. वाणेश्वरी, प्रवेशांक, जून 1987, पृ० 23।
2. चाहों के मन्दार (1986) ओमप्रकाश सास्वत, शारदा प्रकाशन अंसारी रोड़ नई दिल्ली-11002।

आकाशवाणी दिल्ली से भी 'विविध भारती' कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रसारित हो चुकी है।

'कटे संदर्भ' वर्तमान परिस्थितियों के अन्तर्गत पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका तथा बच्चों और मां-बाप के बीच बढ़ते अन्तरालों को द्योतित करने वाला बहुचर्चित नाटक है।

'मेघदूत' महाकवि कालिदास के मेघदूत काव्य की नाटकीय संरचना है। नाटक में धनी लोगों की लोलुप (काम और अर्थ) की वृत्ति को उद्घाटित करते हुए सच्चे प्रेम की प्रवृत्ति को दर्शाया गया है।

'चाहों के मन्दार' इस संग्रह का सबसे महत्त्वपूर्ण पद्य नाटक है। लेखक ने ऋग्वेद के यम-यमी संवाद को—जो लगभग दो वाक्यों में है, नाटक का मूल कथ्य मानकर यम और यमी के चरित्रों का विकास किया है। लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार यम (राज) ही धर्मराज की पदवी पर आरुढ़ हुआ। नाटक कथ्य की व्यापकता, संवादों की सुघड़ता, सार्थकता तथा काम और प्रेम के मूल्यों में अन्तर और चरित्रगत विडम्बना को शालीन और स्वाभाविक ढंग से उभारता है। भाषा में काव्यात्मक व्यंजना तथा सहजता इसकी अतिरिक्त विशिष्टताएं हैं।

इसके अतिरिक्त लेखक के 'रत्नावली', 'मुद्राराक्षस', 'घर बंद है' आदि नाटक भी आकाशवाणी शिमला से प्रसारित हुए हैं। एक नाटक 'पानी की तलाश' हिमाचल स्कूल शिक्षा बोर्ड के स्कूली पाठ्क्रम में भी सम्मिलित रहा।

आकाशवाणी के लिए ही अधिकतर लिखने वाले एक नाटककार का नाम है आर० सी० शर्मा। श्री शर्मा के नाटक 'सुबह की धूप' में हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों में सद्भाव, 'सम्बन्ध' में परिवार में कलह के कारणों, 'रास्ते अपने-अपने' में घर के बड़ों, मां-बाप की उत्तरदायित्व-हीनता, 'एक रात' में जौनसारी जनजाति के युवक-युवत्तियों में उभरती नयी चेतना, 'एक टूटी ज़िंदगी' में ग़लत तरीकों से विवाह सम्बन्ध जोड़ने की प्रवृत्ति, 'चमचे' में खुशामद परस्ती, 'किन्नर कैलाश' में किन्नरी युवकों की समस्याओं, 'वृहस्पति की ज़मीन पर' में भारत की वैज्ञानिक प्रगति की संभावनाओं, 'नई रोशनी' में अन्तर्जातीय विवाह की आवश्यकता, 'रामदीन' में फीजी के भारतीयों की अंग्रेजों द्वारा की गई दुर्दशा, 'डुगडुगीवाला' में अमीर और गरीब बच्चों के मानसिक काम्पलैक्सों, 'सिमटते दिन' में ज़िंदगी की सिमटती घड़ियों, 'प्रोफैसर खटपट' में विश्व विद्यालयों के प्रोफैसरों की अत्तियों, 'बहुरूपिया' में भी अध्यापकों के चरित्र के दोगलेपन, 'चार एक पांच' में भारत के मुख्य चारधर्मों में समन्वयशीलता तथा 'आंखों में आंसू' में नासमझी के कारण अधिक संतान पैदा करने के दुःख को चित्रित किया गया है।

शर्मा के नाटकों का फलक विस्तृत है तथा दृष्टि व्यापक। शर्मा यदि नाट्य तकनीक और भाषाकर्म पर थोड़ा और ध्यान दें तो ये हिन्दी को अच्छे नाटक दे सकते हैं।

रेडियो नाटक लेखकों में ही जगदीश शर्मा का नाम भी चर्चा योग्य है। जगदीश शर्मा के 'लालल', 'सती' तथा 'हमारा हिमाचल' ये रेडियो रूपक प्रमुख हैं। रेडियो रूपक रेडियो नाटक की एक विधा है जिसमें किसी भी सामाजिक लोक कथ्य को उद्धरणों, प्रसंगों के सहारे नाट्य, बनाया जाता है। जगदीश का नाटककार सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देने वाला समर्थ नाटककार है। चूंकि रेडियो नाटक का अपना एक रंगायन है। अतः उसकी समझ, खासकर अधुनातन समझ ज़रूरी है। शर्मा के नाटककार ने रेडियो रूपक, लेखन में योग दिया है।

इसी प्रकार रेडियो नाटकों के लेखकों में एक महत्त्वपूर्ण नाम अनूप महाजन का है, जो आकाशवाणी शिमला में तथा अन्यत्र भी रेडियो नाटकों को लिखते और प्रस्तुत करते रहे हैं।

अनूप महाजन के, 'मां फलेषु, कदाचन', 'महात्माबुद्ध', प्रसिद्ध रेडियो नाटक हैं, जिनमें अनूप ने एक अध्यापक की कर्त्तव्य शीलता तथा बुद्ध की महाकरुणा को नाटकित किया है ।

अनूप महाजन ने अनेक रेडियो रूपक भी लिखे हैं जिनमें 'मैं और मेरी धरती', 'प्रगति और विसंगति', 'पं० गोविन्द वल्लभपंत', 'चन्द्रगुप्त मौर्य', 'अशोक' और 'रौरिक आर्ट गैलरी' आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, अनूप के नाटककार ने रवीन्द्रनाथ की 'मौसी' कहानी, गुलेरी (चंद्रधर शर्मा) की 'सुखमय जीवन' कहानी, तथा शरत चन्द्र के 'पथ के दावेदार' उपन्यास के रेडियो रूपान्तरण भी किये, जो श्रोताओं द्वारा खूब सहारे गए।

इसी तरह महाराज कृष्ण काव का 'दाल ठंडी हो रही है' रेडियो नाटक भी खूब चर्चित हुआ। रेडियो नाटककारों में कुछ उल्लेख्य नाम हैं, कर्नल विष्णु शर्मा, कैलाश भारद्वाज, रामदयाल नीरज, कला ठाकुर, रिड़कूराम (ओंकार लाल भारद्वाज, जिनके 'घर आंगन' की कई कड़ियां प्रसिद्ध हुईं), सुदर्शन डोगरा तथा अश्विनी गर्ग आदि। नाटक लेखकों में कुछ और उल्लेखनीय नाम हैं मुल्कराज शान्तलवी, शशिकांत शास्त्री एवं शिव उपाध्याय आदि।

रंग दृष्टि

नाटक मंचीय प्रयोग विधा है। जब तक नाटक का प्रदर्शन रंगस्थल पर नहीं होता, नाटक अधूरा है। नाटक की व्युत्पत्ति ही नट्-अभिनये धातु से है अतः उसका अभिनीत होना अनिवार्य है।

नाटक के अभिनीत होने की कुछ शर्तें हैं। ये शर्तें यद्यपि व्याकरण के नियमों की तरह बहुत अनुशासनबद्ध तो नहीं हैं किन्तु फिर भी मंच की कुछ अपेक्षाओं की अनिवार्यताएं अवश्य हैं।

आज का नाटक, रंग प्रयोग की नयी-नयी विधियों को अपनाता हुआ, अपने रूप को नवता और विस्तार दे रहा है। परन्तु ये सब बातें बड़े-शहरों और बड़ी सुविधाओं से सम्पन्न राज्यों, सरकारी संस्थानों की हैं। हिमाचल में जबकि नाटक अभी किसी बड़े सरकारी प्रोत्साहन से अनुगत नहीं है अतः इसे यहां के परिवेश तथा व्यक्तिगत प्रयत्नों के अनुरूप ही देखा जाना चाहिए।

प्रदेश के नाटककारों ने मंचीय विधान को ध्यान में रखकर अपने नाटकों का निर्माण किया है। यद्यपि कई नाटककारों ने अपने नाटक मंच पर प्रस्तुत किए बिना भी प्रकाशित कराए हैं तो भी उनमें नाटकीय-विधान की संभावनाएं हैं। कथ्य, भाषा, संवाद, परिवेशानुरूपता, प्रयोजन की प्रासंगिकता, रंगनिर्देशों में मंच सज्जा या दृश्य परिकल्पना, रंगद्दीपन (प्रकाश योजनादि)सभी दृष्टियों से ये नाटक अभिनेय हैं। यहां के नाटककारों ने सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विषयों को समेटते हुए सुन्दर नाट्यसृष्टि की है। लोक शैली में लोक संस्कृति तथा हास्य-व्यंग्य की प्रस्तुति इन नाटकों के अतिरिक्त गुण हैं।

[ओवर-विला, कैथू, शिमला-171003]

कहानी

सूरज डूबे

मंज़ूर एहतेशाम

शाम का सक्ता पड़ते-पड़ते, इससे पहले कि आसमान से सूरज की अन्तिम किरणें विदा हों और परिन्दे अपने-अहने घोंसलों को लौट जाएं, वे तीनों उस पुलिया पे खुद को अकेला पाते : एक दूसरे से नज़रें चुराते, धीरे-धीरे बढ़ते अंधेरे की ओर तकते।

—हवा बन्द है, जिसकी मसें अभी-अभी भीगना शुरू हुई हैं। बात शुरू करते कहता—बहुत उमस है; सांस लेना मुश्किल लगता है।

बाकी दो पानी के फैलाव में नज़रें दौड़ाते यूं खड़े रहते जैसे कुछ सुना ही न हो। फिर कुछ पल ठहर कर दूसरा, जिसके बाल अभी-अभी सफेद होना शुरु हुए हैं। कनखियों से तीसरे, सफेद बालों वाले लगभग गंजे सिर की ओर देखते, व्यंग्यात्मक ढंग से कहता—यह तो शुरु है : आगे-आगे देखो !

तीसरा इस बातचीत में हिस्सा लिये बिना, अपनी बे-आब आंखों से धुन्ध में तकता, खामोश खड़ा रहता।

—जाने क्या समय हो गया होगा ? दूसरा अपने स्वर में एकदम से छलक आई बेचैनी पर काबू पाने की कोशिश करते कहता—आसमान बादलों से घिरा है; कुछ भी अन्दाज़ा लगाना मुश्किल है।

दूसरे की बात सुनकर तीसरे के होंठों से एक बेसाख़ता हंसी फूटती और दूसरा यूं सहम जाता जैसे चोरी करते पकड़ा गया हो।

—अभी तो सूरज डूबा है,...अन्तहीन खालीपन में मुंह लटकाए तीसरा,जाने उन दोनों से कहता, या आप-ही-आप बुदबुदाता—अंधेरा पूरी तरह तो फैल जाए।

—आज वह ज़रूर आएगी।...भीगती मसों वाला पहला एकदम उत्साह से बेकाबू हो अपनी दोनों हथेलियां रिगड़ने लगता—पहली बार जब मैंने उसे देखा था, हवा यूं ही बन्द थी और आसमान ऐसे ही बादलों से ढँका हुआ। और जब मेरी नज़रें पहली बार पानी की सतह पर डगमगाते, उसकी लालटेन के अक्स पर पड़ी थीं, तो डर और खुशी से मेरे हाथ-पांव फूल गए थे ! वह आकृति—काले अंधेरे में और भी गहरे काले रंग का घब्बा—धीरे-धीरे तट की ओर बढ़ती आई थी। गोल पेंदे की बन्द कशती ज्यों-ज्यों करीब आती गई, लालटेन की धुन्धली रोशनी में ऊपर खुली खिड़की के पट और उसकी भटकती नज़रें सब साफ-साफ नज़र आने लगे थे। वही थी, बिल्कुल वही !

दूसरा पहले पर झुंझला उठता।—यह मत भूलो,...वह उसे डांटते स्वर में कहता—उस शाम हम दोनों भी तुम्हारे साथ थे ! यहीं—इसी जगह !

—अभी तो सूरज डूबा है,...तीसरा लगभग गंजा सिर, बुदबुदाता—अंधेरा पूरी तरह तो फैल जाए।

—तुम तो कहते हो,...पहला दूसरे से शिकायती स्वर में कहता—कि तुम उसे पहले से जानते हो ? कि तुम्हें अपने साथ कशती में लिये वह समुद्र-समुद्र घूमी, द्वीप-द्वीप दिखाया : कि वह तुम से प्रेम करती थी और तुम खुद उसे छोड़ आए थे। तुम कहते हो आज तलक यूँ रोशनी थामे, समुद्र-समुद्र, लहर-लहर, वह तुम्हें तलाशती भटक रही है ?

—मैं,...दूसरा उसी झुंझलाए स्वर में कहता—झूठ नहीं कहता !

—मैं नहीं मानता !...भीगती मसों वाला, पहला निर्णायक स्वर में कहता, और लगभग गंजा, तीसरा, हंस देता।

—मुझे मालूम है,...पहला, अभी-अभी सफेद हुए बाल वाले दूसरे से कहता—कि तुम झूठ बोलते हो, और वह भी सिर्फ मुझे पीड़ा पहुंचाने को ! तुम्हें पता है कि उसे तुम्हारी बिल्कुल परवाह नहीं ! यही नहीं, उसे तुम्हारे वजूद की भी खबर नहीं ! उसे सिर्फ मेरी तलाश है।

—तलाश है,...अंधेरे में, पहले द्वारा बोले गए वाक्य का अन्तिम टुकड़ा, तीसरे के मुंह से गूँज बनकर फूटता।

—मेरे अलावा उसकी आँखों का भाव, न कोई समझा है न समझ सकता ! वह सिर्फ मेरे लिए पैदा हुई है।

—हुई है,...तीसरे के मुंह से गूंज दोहराती।

—किसी के बाजुओं में इतनी ताक़त नहीं कि उस कशती के बादबान साधे या उसे मनचाही दिशा में चला सके।

—चला सके,... कहता, तीसरी गहरी सोच में पुलिया पर झुक जाता।

सब कुछ काफी देर तक गहरी खामोशी में डूबा रहता।

—मैं झूठ नहीं कहता !...दूसरे की फुसफुसाहट अंधेरे और खामोशी के बीच सरसराती—तुम इसे बताओ,...वह तीसरे से विनीत स्वर में कहता—तुम्हें तो सब खबर हैं ! कशती में जगह-जगह तुम्हारी तस्वीरें टंगी हैं—खुद मैंने अपनी आँखों से देखा है : कशती का कोई कोना ऐसा नहीं जहाँ तुम्हारी तस्वीर साज-सजावट के लिए न टाँगी गई हो ! बताओ कि पहले कितने साल तुमने उस कशती की मल्लाही में बिताए; कि मुझसे पहले तुम उसके साथ समुद्र-समुद्र घूमे, द्वीप-द्वीप देखा; कि वह तुमसे बेहद प्यार करती थी। कि लगता है, मुझसे पहले, तुम्हारे लिए आज तक वह यूँ रोशनी थामे, समुद्र-समुद्र, लहर-लहर भटक रही है ! बताओ !

—बताओ,...तीसरे की बुदबुदाहट से फैला अंधेरा धड़क उठता।—अभी तो सूरज डूबा है,...वह लाचारी से कहता—अंधेरा पूरी तरह तो फैल जाए।

शाम का सक्ता पड़ते-पड़ते इससे पहले कि आसमान से सूरज की अन्तिम किरणें बिदा हों और परिन्दे अपने-अपने घोंसलों को लौट जाएँ, वे तीनों उस पुलिया पे खुद को अकेला पाते : एक दूसरे से नज़रें चुराते, धीरे-धीरे बढ़ते अंधेरे की ओर तकते।

वे तीनों।

[4 वाहिद बिल्डिंग, हमीदिया रोड़, भोपाल]

बाबू ! हम बेसवा नहीं हैं !

□ दिबेन

"गिरवी क्या होता है ?" उसने उसकी आंखों में आंख डालने की कोशिश करते हुए पूछा।

"तू नहीं जानती ?" वह उसकी नजर से बचते हुए बोला।

उसने ना में गर्दन हिला दी।

उन दोनों के बीच बहुत देर से चुप्पी की मजबूत सिल जमी हुई थी। उसके सवाल ने इस सिल पर एक हल्की चोट की थी, "ठक् !"

सिल अब बिखरती-सी लगी थी।

खाने की छुट्टी होते ही किसोरी ने काम बन्द करके छलने में बन्धी रोटियां उठाईं और लोहे के ड्रम में भरे हुए मटियाले पानी से हाथ धोकर, यहां चली आई थी—भीड़-भाड़ से दूर कीकर के नीचे।

भोला भी काम बन्द करके उधर ही आ गया था।

दोनों ने एक-एक प्याज हाथ से फोड़कर नमक-मिर्च की चटनी लगी रोटियां खाईं।

किसोरी नमक-मिर्च की चटनी तो रोटियां सेंकने से पहले ही बना लेती है, फिर रोटियां सेंकती जाती है और उनको एक-एक कर चटनी से चुपड़ती जाती है। ऐसा करने से उसे दो फायदे होते हैं—एक तो काम पर नमक-मिर्च रोटियों के साथ लाने की जरूरत नहीं रहती और दूसरे नर्म होकर रोटियां आराम से हलक के नीचे उतर जातीं हैं। रोटियों के साथ ही दो प्याज छलने में बांध लेती है—एक भोला के लिए दूसरा अपने लिए।

उसने रोटी खाकर घड़िया से पानी पिया और उसी पेड़ के नीचे सुस्ताने बैठ गई। भोला भी पानी पीकर वहीं आ गया और छाया का एक टूटा-सा चिथड़ा सर पर ओढ़ कर सुस्ताने बैठ गया।

···भला कीकर की छाया होती ही कितनी है ? यही कोई बित्ता दो बित्ता ! इसे ही दोनों मरद-बीर मिल बांट कर ओढ़ लेते हैं। कीकर उसे बहुत भला लगता है। बेचारा उसी के जैसा दीन-हीन है। एकान्त में खड़ा रहता है सबसे अलग-थलग। ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर ! ना किसी आने वाले से मतलब, ना जाने वाले से कोई गिला-शिकवा।

रोटी खाते वक्त इन दोनों के अलावा यहां कोई नहीं आता। सारी भीड़ नीम और

सीसम के पेड़ों के नीचे चली जाती है। बड़े जबरजंग पेड़ हैं। छाया भी बहुत घनी है। नींद भी खूब आती है।···पर अलन्तर एकान्त तो नहीं है न वहां! उसे किसोरी के साथ एकान्त में बैठना बड़ा अच्छा लगता है।

ये बड़े-बड़े पेड़ तो उसे अपने ठेकेदार बाबू की तरह लगते हैं— जहां छाया तो है पर चैन नहीं है।

कीकर तले छाया न सही चैन तो है।···किसोरी के साथ, एकान्त में बैठकर रोटी खाने में ऐसा चैन मिलता है कि बस्स···पूछो ही मत।

किसोरी और भोला को यहां आये एक अरसा बीत गया है। जब ठेकेदार बाबू के गुमाश्तों के साथ गांव से मोटर में बैठकर चले थे तब सपने में भी नहीं सोचा था कि अब वह गांव की धरती पर पाँव टिकाने को भी तरस जायेंगे। उसके साथ आस-पास के गवांड के कई लोग आये थे पर अपने गाम-देस के दरसन करने का सौभाग इसके बाद किसी को भी नहीं मिला था।

बापू उसे मोटर में बिठाने गांव के गोहरे तक आया था। उस टैम बापू की आंखों में आंसू देखकर उसका दिल कांप गया था। बापू की आंखों में आंसू तो उसने कभी नहीं देखे थे। उनके माथे पर तो कभी उदासी की शिकन तक भी नहीं आई थी—कितनी भी मुसीबतें आई हों! बापू गांव के मुखिया जो ठहरे। अगर इस तरह हल्का जी करते तो दुख तकलीफ के टैम पै गांव-गोत का हौसला कैसे बंधाते?

बड़े बहादुर थे बापू! सुरू-सुरू में राजा साब की पल्टन में थे। फिर राजा सॉब के महल में लग गये। गांव के लोग अब भी उनके खानदान की बहादुरी की आल्हा गाते-सुनाते थे।··· अब तो राजा नहीं रहे, पल्टन नहीं रही। जमाना ही बदल गया है।

आज भी बापू की पिंशन आती है। पहले हर महीना एक रुपया पिंशन आती थी। अब कुछ फालतू आती है। इतने पैसे से अब होता क्या है?···और फिर सूखा! अकाल!!

साल छः महीने की बात हो तो सर भी जाये।···पर जब बरस-दर-बरस राम जी ही ना बरसे तो किसी का क्या कसूर? बेचारी धरती माता का क्या कसूर?

जब धरती माता खुद प्यासी मरती हो तो अपने टाब्बर को कहां से दूध-गंगा जल पिलाए?

हर साल अकाल पड़ता रहा, उनके घर के ढोर-डंगर सेठ की पौली में जाते रहे। ढोर कम होते गये, सेठ का कर्ज बढ़ता गया।

जिस दिन सेठ के कारिन्दे उनकी गाय सुभानी को लेने आये थे, उस दिन भी बापू के जी पर बड़ा ज़ोर पड़ा था। बड़ी सील गाय थी सुभानी। किसन भगवान की गाय की तरह। बापू तो कहते थे कि सुभानी भी किसन भगवान की गाय थी। जब गांव से किसन भगवान ने ही मुखड़ा मोड़ लिया तब उनकी गाय ही गांव में बापू के पास क्यों रहती? सुभानी तो सेठ के कारिन्दों के साथ जा ही नहीं रही थी। उसकी आंखों में आंसुओं की झड़ी लगी थी। बार-बार बापू की ओर देखकर डकराती थी।···बापू से यही तो बरदास नीं हुआ था। वो खांसते हुए पौली से उठकर बाहर चले गये थे। भीतर का दरद छिपाने के लिए ही शायद उन्हें खांसी उठ रही थी।

बापू भी आखिर जब तक ढोर डंगरों के सहारे ज़िन्दगी चलाते! ज़िन्दगी तो ज़िन्दगी

की तरह ही चलती है—शादी-ब्याह हैं ! गौने-भात-छूछक है ! और कितने नेग-जोग हैं ! सब कहीं ढोरों के सहारे निभते हैं ? पहले गहणे-जेवर गिरवी रखे गये। फिर खेतों का नम्बर आया—एक के बाद एक !

···और लिछमी की सादी में तो सेठ ने खेत गिरवी रखने से ही इन्कार कर दिया था।

"पण सूबेदार, म्हारै भी बाल बच्चे हैं ! इन बंजर खेत्तां न गिरवी रख के इनके मूँ पै छिन्का कैसे बान्धें ?" सेठ ने साफ-साफ कह दिया था।

लिछमी की सादी तो करनी ही थी, सो बापू ने हवेली गिरवी रख दी। आखिर इज्जत तो बचानी ही थी—लिछमी की सादी कब तक टालते ?

बापू ने हवेली गिरवी रख तो दी पर उस पर ज़ोर बहुत पड़ा। अच्छे भले शरीर को घुन-सा लग गया। उन्हें रोज खांसी उठने लगी। गांव का मुखिया अब गांव के लोगों के सामने पड़ने से भी कतराने लगा। एक के बाद एक लोग गांव छोड़ कर जा रहे थे। अब वह उन्हें कैसे रोके ? कहां से खाने को दे उन्हें ? जब तक उसमें हिम्मत रही, उसने पूरी कोशिश की कि गांव का कोई आदमी अपनी धरती, अपना घर छोड़कर न जाये। मुखिया बहादुर सिंह, गांव के भाई-बिरादर को अपना कलेजा भी निकाल कर खिला सकता है।

भगवान ने तो लगता है जैसे उसके सारे पंख ही कतर दिये हैं। उसका कलेजा भी अब उसका अपना नहीं रह गया है। वह भी सेठ के यहां गिरवी रख आया है—बहादर सिंह !

बापू के चेहरे पर उसने झुरियां उगती देखी हैं ! बापू के चेहरे पर उसने मुखिया बहादुर सिंह को तिल-तिल करके किश्तों में खुदकशी करते देखा है।···बापू का इस तरह छीजना उससे देखा नहीं गया। तभी छक्कन काका की दुबारी में जब वह पहली बार ठेकेदार के गुमाश्ते से मिला तभी उसकी सारी बातें मान कर उसके साथ शहर जाने का पक्का इरादा कर लिया।

ठेकेदार की तरफ से उन्हें इतना पैसा नकद देने का वादा किया गया था, जितने में उनकी गिरवी रखी हवेली छूट जाये। सीधी-सी बात थी—ठेकेदार उनकी हवेली की गिरवी छुड़ा देगा, बदले में भोला और उसकी बहू ठेकेदार की लेबर में तब तक काम करेंगे जब तक उनका पैसा पूरा नहीं हो जाता।

उसकी समझ में सारी बात ठीक-ठीक आ गई थी। सबसे बड़ी बात, जिसे वह सपने में भी नहीं सोच सकता था, यह थी कि उनकी हवेली की गिरवी छूट जायेगी।

उसने घर आकर सारी बात बापू को बता दी थी।

"बहू भी जायेगी ?" उन्होंने पूछा था।

"हाँ !" उसने गर्दन झुकाये-झुकाये ही उत्तर दिया था।

"बहू तो घर की लछमी होती है। वही चली जायेगी तो हवेली में ईंट-गारे के अलावा क्या बचेगा ?" उन्होंने रुन्धे गले से कहा था।

"हवेली की गिरवी तो छूट जायेगी, बापू।" उसने हिम्मत जुटा कर कहा था, "लोग यह तो नहीं कहेंगे कि पुरखों की लगाई ईंट भी बेच गया बहादर सिंह।"

"हां ! हवेली की गिरवी तो छूट जायेगी !···पर मेरे बेटे-बहू ?" बापू का गला रुन्ध गया था। उन्होंने खाट पर बैठकर एक लम्बी सांस ली थी, "बेटे-बहू को गिरवी रख कर हवेली छुड़ानी है।···क्या खूब सौदा किया है ?"

वह बहुत देर तक खांसता रहा था।

इसके बाद छक्कन काका बापू को हिम्मत बन्धाते रहे थे, "मुखिया ज्यू ! थोड़े दिन की तो बात है। अच्छे दिन भी वापस ज़रूर आयेंगे।··· राम जी बरस गया तो अपने छोरटां न वापस ले आयेंगे।

"ठीक कहते हो, छक्कन ! अब हवेली की गिरवी छुड़ा लेते हैं। राम जी बरस गया तो बहू-बेटे की गिरवी छुड़ा लेंगे।" बापू ने ढीली सांस छोड़ते हुए कहा था।

आखिर बापू तैयार हो ही गया था।

बापू ने ठेकेदार के रुपये से सेठ का पाई-पैसा चुकाया और हवेली की गिरवी छुड़ा लाये। इससे उन्हें सन्तोष तो बहुत हुआ पर मन की कहीं किसी गहरी पर्त पर कोई एक बड़ा भार पत्थर की तरह जम गया था—'अकेला बेटा और बहू गांव छोड़कर परदेस चले जायेंगे।'

घर पर हर कोई दुखी था। छोटी मां और बड़ी मां के तो आंसू ही नहीं सूख रहे थे। ऐसा लगता था जैसे घर की दीवारें और दर सब उदास हो गये हैं।

गांव की औरतें मां और किसोरी को घेरे खड़ी थीं।

बापू के पास खड़े गांव के बड़े-बूढ़े मुश्किल से अपने आंसू रोक पा रहे थे।

तब उसे पहली बार असलियत में महसूस हुआ था कि भगवान राम जी वन गये थे तो अजुधिया जी में कैसा सोग छाया होगा ? माता कौसला और सुमित्तरा कैसी बिलख-बिलखकर रोई होंगी !!

किसोरी ने चलते बखत मांई के पैर दबाये तो माई डकरा कर रो पड़ी थी, "म्हारी फूल-सी लिछमी कैसे जसोटा काटेगी रे, राम जी !"

छोटी मांई हिड़क-हिड़क कर रो रही थी। उसकी आंखें सूज कर पपोटा-सी हो गयीं थीं।

कितने दिन की बात हो गई है ! जब वह बीड़ी सुलगा कर बैठता है तो सारी बात ऐसे याद आती हैं जैसे कल की ही बात हो !

पिछले दिनों में किसोरी ने उससे कई बार पूछा है—गिरवी क्या होता है ? पता नहीं किस बात से उसके दिमाग पर इतना जोर पड़ रहा है, जो वह इतनी परेशान-सी रहती है ! कुछ कहती भी नहीं है। लगता है दिल ही दिल में घुलती रहती है। कोई घुन लग गया लगता है उसे। जो रत्ती-रत्ती उसके कलेजे को खा रहा है।

मुखिया के घर में लिछमी बन कर आई कंवरानी को कभी ठेकेदार की लेबर में भी काम करना पड़ेगा—यह किसने सोचा था !! पर बखत की मार है, जो बेचारी दासियों का-सा जीवन जीने को मजबूर है।

यह सब याद आता है तो उसका मन एक अजीब-सी गन्ध से भर जाता है—ऐसी गन्ध जो केवल पशुओं में ही आती है—कुत्ते, बिल्ली जैसे पालतू पशुओं में ! शुरु-शुरु में इस गन्ध से उसका जी बड़ा खराब होता था।···पर अब ! अब तो उसे आदत-सी पड़ गई है, इस सबकी। ···बस्स ! कभी-कभी जीभ का स्वाद बिगड़ जाता है। बक्-बकाहाट-सी घुल जाती है मुंह में।

आज जब उसने फिर पूछा—'गिरवी क्या होती है ?' तो कल तक की कहानी सनीमा की तरह उसकी आंखों के आगे घूम गई।

"तू ये सब क्यों पूछती है ?" उसने दिल में चुभन-सी महसूस की। उसे लगा कि जैसे

टूटे हुए कांच का कोई टुकड़ा दिल में फंसा हुआ है—जो चुभता है तो लगातार चुभता ही रहता है। कभी-कभी तो यह चुभन बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। तब तो सांस लेना भी उसके लिए कठिन हो जाता है। किसोरी उसके सामने बैठी नीं थी कि यह चुभन और बढ़नी।

कैसा सोने की तरह दमकता हुआ सा सरीर था, किसोरी का! दम्-दम् दमकता था! एकदम बासंत्ती फूलों की तरह!···सोने की-सी दमक और फूल जैसा नरम-मुलायम गात! अब क्या है? अब तो समय की आग ने सब कुछ झुलसा कर रख दिया है। सरीर का रंग भी जले हुए ताम्बे का-सा हो गया है।

जेठ-साढ़ हो या पोह-माह, किसोरी ने हमेशा उसके साथ, उसके बराबर काम किया है। तन पर कपड़ा हो या न हो। रोटी के साथ साग-तीवन हो या न हो, उसने कभी परवाह नहीं की। उसे हमेशा एक ही धुन रही है—ठेकेदार का पैसा उतरे तो वह जाये—माई बापू के के पास। तभी वह अक्सर पूछती रहती है—"ठेकेदार का पैसा कब पूरा होगा!"

उसकी आंखों की सूखी हुई नदी में, रेत पर पड़ी कुछ मछलियां फड़फड़ाती हैं—"हम घर कब जायेंगे?"

वह उसे क्या जवाब दे? यह सब तो वह खुद नहीं जानता है। कभी-कभी उसे लगता है कि कहीं ठेकेदार का हिसाब-किताब भी अपने गांव के सेठ के हिसाब-किताब जैसा तो नहीं है? जिसका आदि तो है पर अन्त कहीं नहीं है। ऐसा सोचकर उसे बड़ी घबराहट होती है वह किसी परकटे परिंदे की तरह फड़फड़ाता रहता है—घन्टों फड़फड़ाता है और फिर थक कर बेसुध हो जाता है। इसीलिए इस तरह के विचार से वह बचना चाहता है, उसे झटक कर दूर फेंक देना चाहता है।

ठेकेदार की वह बड़ी इज्जत करता है। उसका अहसान भी मानता है। यदि उसने उनकी हवेली की गिरवी छुड़ाकर उनके खानदान की इज्जत न बचाई होती तो आज सारा गांव-गवाण्ड, गोती-नाती, जात-बिरादरी सब उनके मुंह पर थू-थू करते। हमारा क्या है? गांव में किसे पता है, हम यहां क्या करते हैं? किसे पता है—किसोरी और भोला कभी सड़क पर तो कभी किसी बन्धे पर पत्थर-रोड़ी तोड़ते हैं! टोकरी ढोते हैं! ठेकेदार और उसके गुमाश्तों की गुलामी करते हैं! काम की क्या है? काम करने से कोई घिसता थोड़े ही है। काम तो अपने घर भी करते हैं। खेत-क्यार में भी करते हैं।

खेत की याद आते ही उसकी आंखें पसीज गईं। काम तो खेत में करने में ही मजा आता है—पर रामजी ही ना बरसे तो कोई क्या करे? सड़क-डैम पर मजदूरी तो करनी ही पड़ेगी।

उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ता है, जब वह किसोरी की शक्ल देखता है—कंवरानी किसोरी! मुखिया ज्यू की ऐकली बहू! घर-लछमी!···डैम पर रोड़ी कूटती है। कस्सी चलाती है।

उसने कई बार समझाया—भारी काम ना लिया कर। कस्सी-गैंती का काम उसके लिए ठीक नहीं है।···वह माने तब ना! वह तो वही काम करेगी जिसमें ठेकेदार दो रुपिया फालतू देगा।···उसे कर्ज उतारने की जल्दी जो है।

उसे चुप देखकर किसोरी फिर बोली, "मैं क्यूं पूछती हूं? क्यों काम करती हूं! इससे तुझे क्या?"

वह सकपका गया।

"तू मुझ से यह मत पूछ ! मेरा हिया फटता है।" कहते-कहते उसकी आंखें छलछला आईं।

उसकी आंखों में आंसु देखकर किशोरी सहम गई—कैसा मरद है !···रोता है !!

उसके दिल में घबराहट-सी होने लगी।

कभी-कभी किसोरी को लगता है कि जैसे एक बहुत बड़े समन्दर के बीचों-बीच एक छोटी-सी नाव पर वह भोला के साथ बैठी है। चारों तरफ घटाटोप अंधेरा !···पानी ही पानी ! बड़े-बड़े मगरमच्छ और समुद्री मछलियां मुंह बाये उनकी नॉव के चारों तरफ चक्कर काट रहे हैं।

वह किनारे तक पहुंचना चाहती है पर किनारा दूर-दूर तक दिखाई नहीं दे रहा है। समन्दर में उठ रही बड़ी-बड़ी विकराल लपटें उनकी नॉव को गेन्द की तरह कभी इधर उछाल देती हैं, कभी उधर। नॉव के चप्पू चलाते-चलाते भोला थक गया है। उसके हाथों से चप्पू छूट कर नीचे गिर गये हैं। अब वह अकेली ही चप्पू चला रही है।···लगातार चलाती जा रही है। उसके हाथ भी थक गये हैं। लगता है जैसे हाथों की सारी जान कहीं से रिस-रिस कर बाहर निकलती जा रही है। वह और भी तेजी से चप्पू चलाती है। तभी, अचानक उसे लगता है—नॉव में कोई गति नहीं है। हरकत नहीं है। वह अपनी सारी ताकत नॉव को गति देने में लगा देती है। पर नॉव तो लगता है जैसे कहीं जम ही गई है। वह पस्त होने लगती है। उसकी हिम्मत की डोर टूटने लगती है। तब उसे अहसास होता है—समन्दर में पानी नहीं रेत ही रेत भरा है। उसकी नॉव इसी रेत में धंसी खड़ी है। वह हांफ रही है। शरीर पसीने से तरबतर है।

···घबराहट में उसकी सांस सचमुच उखड़ जाती है।

"तू रोता क्यों है ?" उसने घबराहट छिपाकर कहा, "पल्टन में होता तो लड़ाई कैसे लड़ता ?

भोला ने बीड़ी सुलगा ली और एक ईंट सिर के नीचे लगा कर धरती पर पसर गया।

किसोरी को कभी-कभी भोला पर बड़ी दया आती है और कभी-कभी गुस्सा भी बड़ा आता है। आदमी को तो हमेशा आदमी ही रहना चाहिए। आदमी की तरह सख्त और मजबूत !···पर ये भोला तो अब बात-बात में रोने लगता है। पहले तो ऐसा नहीं करता था ! पता नहीं इसके अन्दर का आदमी इतनी जल्दी कैसे मर गया !!

उसे लगता है गिरवी होने के बाद ज़रूर आदमी में कुछ बदलता है। हो सकता है गिरवी होने के बाद ही आदमी में केंचुए जैसी गन्ध पैदा होती हो ! उसे कई बार भोला के शरीर में ऐसी गन्ध आती है।···हां सच ! जब भोला उसके पास लेटा होता है तब कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे कोई केंचुआ उसके तन से चिपका हुआ है। उसी तरह का गिल-गिलापन उसी तरह की लिज-लिजाहट !···

भोला ठेकेदार की बड़ी तारीफ करता है। कहता है—"बाबू तो देवता है—किशन भगवान का औतार है। उसी ने सेठ के हाथों हमारी लाज उतरने से बचाई है।"

वह जानती है। यह तो सब के सब औतार ही हैं। देवता ही हैं। मैंट बाबू भी औतार है। छोटा सॉब भी औतार है और बड़ा सॉब भी। हर समय हर जगह रास लीला करने तैयार बैठे रहते हैं। उस दिन अचानक उसकी कस्सी क्या टूटी वह तो आफत में ही फंस गई

थी।'''वह काम बीच में छोड़कर स्टोर में कस्सी बदलवाने चली गई। बाहर स्टोर बाबू नहीं मिला तो वह कुछ देर इन्तज़ार करके झिझकती हुई अन्दर चली गई। अन्दर एक ओर कस्सी-कुदालें भरी पड़ी थीं और दूसरी ओर सिमेन्ट के बोरों की चट्टियां लगी थीं।

उसकी निगाह सिमेंट के चट्टों की तरफ गई—हाय दैया ! ई-का !! उसने आंखें बन्द कर ली और एक दम बाहर भाग आई।'''सिमेंट के चट्टे से कमर टिकाये खड़ी थी—मुरली की बहन, देवा। उसकी अंगिया खुली हुई थी। स्टोर वाला बाबू बच्चे की तरह चूस रहा था। '''उसका तो दम ही निकल गया था यह सब देखकर।

शुरू-शुरू में वह जब यहां आई थी तब छोटे साॅब ने उसकी ड्यूटी साॅब लोगों को पानी पिलाने की लगाई थी।

जब वह पहले दिन बड़े-साॅब को पानी पिलाने उनके टैण्ट में गई—वह पागलों की तरह, अजीब हाव-भाव से उसे घूर रहा था। उसकी आंखें सुर्ख थीं और ओंठ कांप रहे थे।

उसने पानी का गिलास भर कर उन्हें दिया, "पानी पिओगे साॅब ?"

"हां, हां ! क्यों नहीं !" वो अपनी कुर्सी से उठ गया था, "जी भरकर पानी पिलाओ, रानी, पर ऐसे नहीं।"

कहते-कहते उसने उसका हाथ कलाई से पकड़ लिया। उसका सारा शरीर झनझना गया था। ऐसा लगा जैसे किसी ने लोहे की गर्म, जलती हुई संढ़ासी से जकड़ रखा हो। उसने झटके से अपनी कलाई छुड़ा ली। उसे लगा जैसे अन्दर की सांस अन्दर ही घुट गई है। चेहरा तपे हुए लोहे की तरह सुर्ख हो रहा था।

वह टैण्ट से बाहर आ गई थी, पर साॅब का अश्लील ठहाका काफी देर तक उसकी पीठ पर चिपका रहा था।

उस दिन वह घंटों परेशान रही। उसे महसूस हो गया था कि वह एक पर-कटी चिड़िया है जो फड़फड़ा तो सकती है पर उड़ नहीं सकती।

इसके बाद उसने कभी पानी पिलाने की ड्यूटी नहीं ली थी। खास तौर से, साॅब लोगों को पानी पिलाने की ड्यूटी तो कभी ली ही नहीं।

उस दिन भोला ने किशोरी को बताया, "आज साॅब के यहां बाबू लोग आयेंगे। काम का चेकिंग करेंगे। सरकारी बाबू लोग हैं।"

"तो मैं क्या करूं ?" किशोरी की मुद्रा कठोर हो गई थी।

"वो रोशनी, देवा, सुरस्ती'''!" भोला हकला गया था। उससे साफ नहीं बोला गया, "'''सभी जायेंगी, इधर।"

उसकी बात खत्म होने से पहले ही किशोरी तमक गई थी, "किशोरी, मुखिया ज्यू के घर की बहू है।'''बेसवा नहीं है।" उसकी आंखों में खून उतर आया था, "हम मेहनत करके करजा उतारेंगे। इज्जत बेच कर नहीं।"

"तू कैसी बात करती है ?" वह झुंझला कर बोला था।

उस दिन पहली बार उसने भोला के चेहरे पर अजीब से भाव देखे थे। उसे उसका चेहरा देखकर बड़ा अचरज हुआ था।

"राजा की सेवा करना तो परजा का धरम है, किसोरी।" वह उसे समझा रहा था,